शांति-यात्रा

जीवन के नैतिक विकास में प्रेरणा देने वाले प्रवचन

•

आचार्य विनोबा

•

१९५१

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तंड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९४९
मूल्य
अजिल्द : अढ़ाई रुपये
सजिल्द : साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रयोजन

शांति और रचनात्मक काम के एक सेवक की हैसियत से आजकल मैं हिंदुस्तान में घूम रहा हूं। गए साल के भ्रमण में दिए गए व्याख्यानों का यह सार-संग्रह है। मैं आशा करूंगा कि रचनात्मक मनोवृत्ति बढ़ाने में इससे कुछ मदद पहुंचेगी।

परंधाम, पवनार
२१-२-४६

—विनोबा

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१. धर्म और सत्ता	..	१
२. प्रार्थना की महिमा	..	७
३. सबसे पहले हम इन्सान हैं	..	१०
४. प्रश्नोत्तर	..	११
५. सच्चा धर्म	..	२३
६. गरीबी अपनावें	..	२७
७. सिंधी विद्यार्थियों से—	..	३०
८. इस्लाम की सिखावन	..	३३
९. झगड़ों का सही कारण	..	३६
१०. सीखो और सिखाओ	..	४०
११. व्यक्तिगत और सामूहिक प्रार्थना	..	४३
१२. राष्ट्र-भाषा	..	४५
१३. (१) जैनों का मुख्य विचार	..	५०
(२) मांस-भक्षण	..	५४
१४. हमारा कर्तव्य	..	५९
१५. मुसलमानों में विश्वास पैदा करो	..	६३
१६. कांग्रेसजनों का कर्तव्य	..	६६
१७. मूर्ति-पूजा का रहस्य	..	७०
१८. सब धर्मों की सिखावन	..	७९
१९. निर्भय बनो	..	८१

विषय पृष्ठ

२०. सर्वधर्म-समादर .. ८३
२१. सर्वधर्म-समभाव की व्याख्या .. ८६
२२. क्षमा-प्रार्थना .. ९०
२३. इस्लाम का उपकार .. ९४
२४. महान् राष्ट्र की जिम्मेदारी .. ९५
२५. अपरिग्रह की सादी युक्ति .. ९९
२६. व्यापक आत्मज्ञान .. १०२
२७. स्वराज्य यानी रामराज्य .. १०४
२८. ध्यान की वेला .. १०९
२९. तंगी का इलाज .. ११४
३०. स्त्रियों का दायित्व .. ११८
३१. आंतरिक शांति की आवश्यकता .. १२१
३२. चावल-तराशी बंद करो .. १२३
३३. आत्मौपम्य-दृष्टि .. १२६
३४. हम सब हरिजन बन जायं .. १२८
३५. सामूहिक प्रार्थना का संकल्प .. १३१
३६. वानप्रस्थ .. १३२
३७. सर्वत्र ईश्वर-दर्शन .. १३७
३८. महंगाई का असली हल .. १३८
३९. शहीदों की स्मृति .. १४२
४०. सत्वगुण बढ़ाओ .. १४५
४१. स्वराज्य की सफलता .. १४८
४२. ग्राम-सेवा का महत्त्व .. १५३
४३. टूटे दिलों को जोड़िए .. १६१

विषय पृष्ठ

४४. वैश्यों का धर्म .. १६३
४५. बुद्धिजीवी और श्रमजीवी .. १६८
४६. तेजस्वी विद्या .. १७१
४७. आदर्श सेवक—गोपालकृष्ण .. १७४
४८. आर्थिक समस्या .. १७७
४९. अनशन की मर्यादाएं .. १८१
५०. सच्चीसेवा .. १८६
५१. हमारे शेषनाग .. १८८
५२. चर्खा—हमारे विचार का चिह्न .. १९१
५३. मंदिर-प्रवेश—एक प्रतिज्ञा .. १९५
५४. सबकी सम्मिलित उपासना .. १९७
५५. चंद जरूरी बातें .. २०१
५६. शुक्रवार की प्रार्थना .. २०५
५७. 'बश्शिरिस् साबिरीन्' .. २०८
५८. सुधारकों की तितिक्षा .. २१३
५९. अजीब घटना .. २१८
६०. वर्ण-व्यवस्था का रहस्य .. २२१
६१. दोहरी क्रांति .. २२६
६२. स्त्रियों से अपेक्षा .. २३०
६३. अहिंसा वैज्ञानिक है .. २३२
६४. सुन्दर-जयंती .. २३५
६५. नित्य नई तालीम .. २३९

: १ :

धर्म और सत्ता

आज यह पहला प्रसंग है जब कि मैं दिल्ली के लोगों के सामने बोल रहा हूं। २४ साल पहले मेरे यहां आने का प्रसंग हुआ था। बापूजी हिंदू-मुस्लिम सवाल पर २१ दिन का उपवास कर रहे थे, तब उनके साथ मैं रहा था। उस समय जो प्रार्थना होती थी उसमें बोलना भी पड़ता था। मुझे याद है कि तब मैं कठोपनिषद् पर बोला था। लेकिन वह चंद भाइयों के सामने था, यह एक आम सभा है।

यह ठीक ही हुआ कि यहांके मेरे काम का आरंभ प्रार्थना से हो रहा है। बापू के जीवन की समाप्ति प्रार्थना से हुई। आप सब लोग उस घटना को जानते हैं, इसलिए उसका जिक्र मैं नहीं करूंगा। मेरे शब्द वहां काम नहीं देंगे। बापू से पहली मर्तबा मैं ३२ साल पहले मिला। तबसे अबतक उनके साथ काम किया। जो रचनात्मक काम बापू ने हमें सिखाये उनको चुपचाप करता रहा। अब आप के सामने यहां आकर खड़ा हुआ हूं। मैं बोलने का आदी नहीं हूं। इसलिए आपका अधिक समय नहीं लूंगा।

एक तरह से स्वराज्य हमें हासिल हो गया है। लेकिन उसके बाद हिंदुस्तान की हवा बहुत बिगड़ी है। उसको सुधारने की कोशिश बापू ने आखिर तक की। गिरती हुई इन्सानियत

को ऊपर उठाने की कोशिश में उन्होंने देह छोड़ी। और वह कार्य अब वे हम लोगों पर छोड़ गये हैं। बापू के जाने के बाद वर्धा में उनके साथियों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें अभी अपना क्या कर्तव्य है, इस बारे में विचार हुआ। उसमें यह बात स्पष्ट हुई कि हिंदुस्तान की हवा शुद्ध करने में ही अपना जीवन हमें लगा देना चाहिए। उसके बाद में यहां आपकी सेवा में आया हूं। मेरे साथ जाजूजी आए हैं, जो चर्खा संघ का काम बरसों से करते आए हैं। जमनालालजी बजाज की धर्मपत्नी जानकी देवीजी भी आई हैं। शरणार्थियों के काम में हम क्या कर सकते हैं, यह देखेंगे। सरकार तो वह काम कर ही रही है। कांग्रेस भी कर रही है। हम उनकी मदद करने की कोशिश करेंगे। उसमें से क्या मिलनेवाला है, यह मैं नहीं जानता। उस तरह मैं सोचता भी नहीं हूं। काम करने का अधिकार हमारा है। उसका नतीजा तो उसके हाथ में है, जिसकी प्रार्थना हम रोज करते हैं। जो रास्ता बापू ने हमें बताया वह साफ है। वह यह कि काम कठिन भी क्यों न हो, उसे करते चले जायं। उसमें हमारा जीवन खत्म हो गया तो चिंता ही मिट गई। जैसे पानी समुद्र की तरफ जाने के लिए निकलता है, समुद्र में मिलना है, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर चलता है। रास्ते में गड्ढा मिल गया तो उसे भर कर ही आगे बढ़ता है, न बचा तो उस गड्ढे में खत्म हो जाता है। उससे अगर पूछा जाय कि तेरी मन्शा क्या थी ? तो वह यही जवाब देगा कि मैं तो समुद्र की तरफ जा रहा था, रास्ते में यह गड्ढा आ गया, उसे भरने की कोशिश

की, उसमें मेरा जीवन खत्म हो गया। मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूं।

दुःखियों के दुःख मिटाने की तो कोशिश हम करते ही रहेंगे। दुःखी भी अपना दुःख कुछ दिनों के बाद भूल जायंगे। दुनिया में चंद रोज दुःख और चंद रोज सुख आते रहते हैं। वे तो भाई-भाई हैं। एक गया तो दूसरा आता है। घर में किसीकी मृत्यु हुई तो हम रोते हैं और जन्म होता है तब खुशी मनाते हैं। इस तरह सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु दुनिया में चला ही करते हैं। इसलिए दुःख दूर करना मुख्य चीज नहीं है। मुख्य चीज है द्वेष के खिलाफ लड़ना। आज द्वेष-बुद्धि ने हिंदुस्तान में घर कर लिया है। द्वेष-बुद्धि को हम द्वेष से नहीं मिटा सकते, प्रेम की शक्ति ही उसे मिटा सकती है। सल्तनत की सत्ता से वह मिटनेवाली नहीं है, सल्तनत के बाहर जो लोग हैं उनका वह काम है। सल्तनत उस काम में मदद कर सकती है। लेकिन मुख्य काम तो जनता को ही करना है।

एक बात आरंभ में ही कह देना चाहता हूं। हिंदूधर्म के राज्य की बात हम अपने दिल में से निकाल दें। अगर हिंदूधर्म का भला चाहते हैं तो सत्ता के साथ उसे जोड़ने का खयाल न करें। सत्ता से धर्म फैलाने के प्रयोग इतिहास में हुए हैं, लेकिन उनसे धर्म की हानि ही हुई है। धर्म का उद्देश्य ही सत्ता से विपरीत है। धर्म और सत्ता दोनों का मेल ही नहीं है। जिन्होंने धर्म की खोज में जीवन लगाया वे सत्ता से अलग, दुनिया के सुख-दुःखों से परे, रहकर चिंतन करते रहे और उस चिंतन के प्रभाव से धर्म की प्रभा फैली। धर्म-प्रचार के

लिए उन्होंने सत्ता की इच्छा नहीं रखी, इतना ही नहीं, बल्कि उससे वे दूर रहे। इस विषय में अगर मैं प्रमाण दूं तो शंकराचार्य का दे सकता हूं। हिंदू-धर्म के प्रचार का काम उनसे बढ़कर शायद किसीने नहीं किया है। उसके लिए सारे हिंदुस्तान में वह कई दफा पैदल घूमे। उन्होंने लिखा है कि "धर्मतत्त्व के प्रचार का एक मात्र साधन बुद्धि है। अगर कोई नहीं समझता है तो बुद्धि से उसको समझाना है। फिर भी नहीं समझता है तो फिर से समझाना है। बुद्धि के सिवा विचार-प्रचारका दूसरा कोई शस्त्र नहीं है। क्योंकि अज्ञान को ज्ञान ही मिटा सकता है।" हिंदूधर्म का श्रेष्ठ मंत्र गायत्री माना गया है। उसमें भगवान से प्रार्थना की है कि वह हमें बुद्धि दें। इसीलिए धर्म का प्रचार करनेवाले शंकराचार्य ने बुद्धि से ही समझाने की बात कही है। धर्म-प्रचार का दूसरा हथियार ही नहीं है। मिसाल के तौर पर एक बात कहता हूं। हिंदू-धर्म में एक महान् विचार मनुष्य के पुनर्जन्म का है। इस जन्म में मनुष्य जो कार्य करता है उसे अगर वह पूरा नहीं कर पाता तो दूसरे जन्म में उसे पूरा करने की कोशिश करता है। इस तरह मनुष्य का निरंतर विकास होता रहता है। अब इस विचार को जो नहीं मानते उन्हें क्या आप सत्ता से या कानून से मानने को मजबूर करेंगे ? मान लो कि हिंदू-राज हो गया, तो क्या ऐसा कानून बनेगा कि जो पुनर्जन्म के विचार को मानते हैं वे ही उस राज्य में रहें, बाकी बाहर चले जायं या उन्हें जेल में भेजा जाय ? पुनर्जन्म का विचार तो बुद्धि से ही समझने का विचार है। मुझे ऐसे कई हिंदू मिले हैं जो पुनर्जन्म को नहीं

मानते। कई मुसलमान और क्रिस्ती ऐसे मिले हैं जो कहते हैं कि इस विचार में कोई सार है। धर्म आत्मा का विषय है जिसका प्रचार चिंतन से, ज्ञान से, तपस्या से, अनुभव से ही होता है। बापू ने हमारे लिए एक उदाहरण दे दिया है। प्रार्थना के समय उन्हें रक्षण देने की बात निकली तो उन्होंने कहा कि उस समय तो मैं भगवान के ही हाथ में रहूंगा। उस समय किसी दूसरे रक्षण की बात मैं सहन नहीं करूंगा। क्योंकि प्रार्थना अगर रक्षण के अंदर होती है तो वह प्रार्थना ही मिट जाती है। हम रक्षण को लेते हैं तो भगवान को छोड़ देते हैं। इस लिए हिंदू-धर्मवाले, और सब धर्मवाले, धर्म को सत्ता से जोड़ने की बात छोड़ दें। दोनों को जोड़ने जाते हैं तो धर्म की हानि करते हैं।

और उससे राज्य की भी हानि करते हैं। यह भी इतिहास ने देखा है। आज तो दुनिया का सारा विचार-प्रवाह ही इसके विरुद्ध है। हर एक इन्सान में समानता हो, सब को एक-सा न्याय मिले, कोई ऊंच-नीच न माना जाय, इस विचार से जो राज्य चलेगा वही टिकेगा। अगर राज्य को टिकाना है तो धर्म के साथ उसे नहीं जोड़ना चाहिए। अगर धर्म को बढ़ाना है तो राज्य के साथ उसे नहीं जोड़ना चाहिए। दोनों अपनी-अपनी मर्यादा में अलग काम करते रहेंगे तो दोनों कामयाब होंगे।

अब दूसरा विचार। हिंदुस्तान एक महान् और प्राचीन राष्ट्र है। दुनिया उससे आशा रखे बैठी है। कोई कहते हैं, "दुनिया में युद्ध की तैयारी हो रही है, उससे हिंदुस्तान कैसे बच सकता है?" मैं नहीं जानता युद्ध होगा। आशा तो

करता हूं कि वह नहीं होगा। कम-से-कम निकट भविष्य में तो नहीं होगा। लेकिन होगा तो भी क्या? हिंदुस्तान को तो यही विश्वास रखना चाहिए कि वह अगर खुद सद्विचार पर चलता है तो होनेवाले युद्ध को वह काबू में ला सकता है। दुनिया का हिंदुस्तान पर असर हो सकता है। लेकिन हिंदुस्तान अगर ठीक रास्ते से जायगा तो अपने को बचा लेगा और दुनिया को भी बचा लेगा। कम-से-कम दुनिया के असर से तो वह बच ही जायगा। चंद्र के साथ चंद्र का वातावरण रहता है, मंगल के साथ मंगल का रहता है। वैसे, मेरे साथ मेरा वातावरण रहना चाहिए। लोग कहते हैं, "यह तो कलियुग आया है।" काहेका कलियुग है? कलियुग में रहना है या सत्ययुग में, यह तो तू खुद चुन ले। तेरा युग तेरे पास है। इसलिए हम ऐसा न मानें कि दुनिया की हवा ही युद्ध की है, उसके सामने हम लाचार हैं। लाचार तो जड़ होता है। हम चेतन हैं, आत्म-स्वरूप हैं, अपना वातावरण हम बनायेंगे। अब भी दुनिया हमारी इज्जत करती है, यद्यपि उसे हम बहुत कुछ खो बैठे हैं। इज्जत इसलिए करती है कि हिंदुस्तान ने अपनी आजादी के लिए जो साधन इस्तेमाल किया वह किसी दूसरे देश ने नहीं किया था। इस इज्जत को अगर बढ़ाना है तो यहां हमें शांति और एकता कायम करनी चाहिए। उससे हमारी सरकार की नैतिक शक्ति बढ़ेगी। और हिंदुस्तान के पास अगर कोई शक्ति है तो वह नैतिक शक्ति ही है। भौतिक शक्ति में तो दूसरे राष्ट्र हिंदुस्तान से काफी बढ़े हुए हैं। उस रास्ते से जाना हो तो उन राष्ट्रों के दास और शागिर्द बनकर रहना पड़ेगा।

दुनिया भी इस चीज को जानती है। शस्त्र की शक्ति के लिए हिंदुस्तान के बाहर के राष्ट्रों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। हिंदुस्तान का तो अभी उदय हुआ है। लेकिन जिस विचार को लेकर वह उठा है, उस पर दुनिया की आशा लगी हुई है। बापू की मृत्यु के बाद दुनिया के हर एक कोने से विचारकों ने अपने-अपने विचार प्रगट किये। उन सारे विचारों में यही बात थी कि दुनिया में अगर शांति और आजादी रखनी है तो उसे गांधीजी के बताये रास्ते पर ही आना होगा। मनु ने दो हजार साल पहले यह भविष्यवाणी की थी। वह कहता है "हिंदुस्तान में जो विचारक पैदा होंगे, उनसे दुनिया को चारित्र्य शिक्षण मिलेगा।" बापू के कारण पहली मर्तबा यह भविष्यवाणी सिद्ध हुई है। बापू ने जो विचार हमारे सामने रखा है, उसका अगर हम आचरण करेंगे तो हिंदुस्तान दुनिया का गुरु बनेगा। बापू के संदेश की आज दुनिया को अत्यंत जरूरत है। उसके पालन से ही दुनिया में सुख और शांति बढ़ेगी।

राजघाट, दिल्ली
शुक्रवार ३०-३-४८

: २ :

प्रार्थना की महिमा

गांधीजी के स्मरण के निमित्त हर शुक्रवार को हम लोगों ने प्रार्थना करने का रिवाज रखा है, यह अच्छा है। परमेश्वर की

प्रार्थना में अपार सामर्थ्य है। उसके साथ गांधीजी के स्मरण का भी सामर्थ्य मिल जाता है तो भावना दृढ़ हो जाती है। वैसे, ईश्वर का सामर्थ्य अनंत है। उसमें हमारी तरफ से कुछ जोड़ देने से बढ़ाव होनेवाला नहीं है। फिर भी हम लोगों के लिए जहां दोनों सामर्थ्य एकत्र होते हैं वहां कुछ विशेष अनुभूति आती है। अभी बोलते-बोलते गीता का अंतिम श्लोक मुझे याद आया जिसमें कहा है, "जहां भगवान हैं और जहां भक्त हैं वहां सब कुछ है।" वैसे तो जहां भगवान हैं वहीं सब कुछ है। लेकिन भगवान को तो हमने आंख से देखा नहीं है। भक्त को हम देख सकते हैं। इसलिए हमारी निगाह में भक्त की महिमा बढ़ जाती है। समुद्र का पानी भाप बनकर बादलों में जाता है और वहां से हमें मिलता है। पर हमारे लिए तो बादल ही समुद्र से बढ़कर है। समुद्र को दिल्लीवाले क्या जानें? वे तो बादल का ही उपकार समझेंगे। तुलसीदासजी ने लिखा ही है न? "राम ते अधिक राम के दासा।" लेकिन यह तुलना हम छोड़ दें।

हमारी दृष्टि से इस प्रार्थना में दोनों शक्तियां एकत्र हो गई हैं। सो भक्तिपूर्वक, बिना चूके, काम-धंधे आदि का सर्व विचार एक बाजू रखकर हम इस प्रार्थना में साथ देंगे तो सारे जीवन में परिवर्तन हो जायगा।

कुरान में एक सुंदर प्रसंग है। महम्मद पैगंबर ताजिरों के साथ बात कर रहे हैं। वे उनसे कहते हैं, "आप लोग रोज अपने धंधों में लगे रहते हैं, लेकिन हफ्ते में कम-से-कम एक दिन तो अपने धंधों को छोड़कर भगवान की शरण में

आइए ! उससे आपकी तिजारत भी अच्छी चलेगी ।" शरीर की शक्ति कायम रखने के लिए हमको रोज खाना पड़ता है । आत्मा के लिए तो चौबीस घंटे प्रार्थना की जरूरत है । जो वैसी प्रार्थना करते हैं वे महान् हैं । उतनी योग्यता जिनमें नहीं है, वे दिन का कुछ समय तो प्रार्थना के लिए निकालें, और कम-से-कम हफ्ते में एक दिन तो प्रार्थना के लिए इकट्ठे हो जायं । भगवान की प्रार्थना में सारे भेदों को भूल जाने का अभ्यास हो जाता है । यह तो हमारी बदकिस्मती है कि प्रार्थना के कारण भी भेद बढ़ जाते हैं । एक पंथवाले को दूसरे की प्रार्थना के शब्द सहन नहीं होते । जहां अहंकार आया वहां अच्छी चीज भी बिगड़ जाती है । भगवान के सामने हम खड़े हो जाते हैं तो सब समान, सब शून्य हो जाने चाहिए । वहां कोई ज्ञानी नहीं, कोई अज्ञानी नहीं, कोई श्रीमान् नहीं, कोई गरीब नहीं, कोई ऊंच नहीं, कोई नीच नहीं । रात में चंद्र, तारे आदि भेद चाहे दिखाई दें, परंतु सूरज निकलने पर सब साफ हो जाते हैं ।

इसलिए अपने दूसरे कार्यक्रमों को प्रार्थना के समय का खयाल रखकर तै करें, और इस सामुदायिक प्रार्थना में नम्र भाव से दाखिल हो जायं । इस तरह खयाल रखेंगे तो अपवाद करने का भी प्रसंग कम आयेगा । विवेक की जरूरत तो हर हालत में रहती ही है । किसी कारण प्रार्थना में हाजिर न रह सके तो हम जहां हों वहीं उस प्रार्थना की भावना रखें ।

राजघाट, दिल्ली

२-४-४८

: ३ :

सबसे पहले हम इन्सान हैं

शरणार्थियों को बसाने का काम जल्दी होना चाहिए इस बात में हम सब हमराय हैं। वह जल्दी नहीं हो रहा है तो कहीं-न-कहीं गलती है, उसको हमें दुरुस्त करना होगा। उसके बारे में तफसील से विचार करना होगा।

अभी मैं सिर्फ दो बातें कहना चाहता हूं। एक तो यह कि पाकिस्तान क्या करता है यह देखकर हम यहां काम न करें। उस खयाल से तो हम अपने को दूसरों के हाथों में छोड़ देते हैं। फिर वह जैसा चाहेगा वैसा हमें बनायेगा। यह ठीक नहीं है। हमें पहल करना (इनीशिएटिव्ह) अपने हाथ में रखना चाहिए। और जो ठीक बात लगती है, करनी चाहिए। जनता तो नेताओं पर भरोसा रखकर चलती है। जो राह उसको बताई जायगी उस पर वह चलेगी। लोगों को सही रास्ता बताना नेताओं का काम है। और सही रास्ते पर चलने से ही ताकत बढ़ती है।

दूसरी बात, अभी एक भाई ने कहा कि हम हिंदू हैं, या मुसल्मान हैं, इस तरह सोचना छोड़कर हम सब हिंदुस्तानी हैं ऐसा मानें। इसको मैं एक हद तक मानता हूं। लेकिन हमें तो यही विचार दृढ़ करना चाहिए कि सबसे पहले हम इन्सान हैं, बाद में सब कुछ हैं। क्योंकि "हिंदुस्तानी" के अभिमान

में भी खतरा पड़ा है। वह आज नहीं दीखेगा, आगे जाकर दीख पड़ेगा।

पीस कमेटी, दिल्ली
२–४–४८

: ४ :

प्रश्नोत्तर

आप लोगों की बातें तो सुन लीं। अब आप मेरी सुनना चाहते हैं? बचपन में मैं कहानी पढ़ता था। हर एक कहानी के नीचे सार-रूप उपदेश लिखा हुआ रहता था। लेकिन उस उपदेश को मैं नहीं पढ़ता था। इस तरह उपदेश पढ़ने की जब मुझे ही दिलचस्पी नहीं है तो दूसरों को मैं कैसे उपदेश दूं? इसलिए आपको उपदेश देने की मुझे नहीं सूझती। आप लोग कुछ सवाल पूछेंगे तो मैं जवाब दूंगा। इससे आपके दिल की बातें सुनने का मुझे मौका मिलेगा।

प्रश्न : हरिजनों के विद्यालय चलाये जाते हैं, उनकी कान्फ्रेंसें की जाती हैं। लेकिन हरिजनों के लिए इस तरह अलग कान्फ्रेंसें क्यों हों? आम देहाती कान्फ्रेंस क्यों नहीं बुलाई जाती?

उत्तर : जब तक हिंदुस्तान में हरिजन पड़े हैं तबतक उनके लिए खास काम होते रहें तो उसमें कोई दोष नहीं है।

वास्तव में हरिजन और परिजन यह भेद ही मिटना चाहिए। उस दृष्टि से हरिजनों के विद्यालय चलाना, या उनको छात्रवृत्ति देना, यह मुख्य काम नहीं हो सकता। मैं तो कहता हूं कि किसी हरिजन लड़के को अपने घर में ही रख लें। किसीको दो लड़के हैं तो इसको तीसरा लड़का समझ कर उसका पालन और शिक्षण करें। बहुत सी कान्फ्रेंसों से जो काम नहीं होगा वह इससे जल्दी हो जायगा। लेकिन घर में हरिजन रखने की बात आती है तो कहते हैं कि "घर वाले उसके लिए तैयार नहीं हैं। मैं कहता हूं कि यदि हम इतना काम करेंगे तो भगवान का आशीर्वाद पाएंगे और घर बैठे वह सेवा करेंगे जिससे बढ़ कर शायद ही कोई सेवा हो सकती है।

प्रश्न : हम लोग किसी काम के लिए चंदा इकट्ठा करते हैं, लेकिन वह पैसा बहुत करके शोषण से कमाया होता है। क्या उसका असर हम जिस काम में, वह पैसा इस्तेमाल करेंगे, उस पर नहीं होगा? पाप से कमाया हुआ पैसा लेकर हमारे काम कैसे सफल हो सकते हैं? क्या गांधी-स्मारक-फंड में इस तरह का पैसा लेना उचित होगा?

उत्तर : यह बहुत अच्छा सवाल है। इसमें पहले तो मैं यह कहना चाहता हूं कि हम जितने काम करेंगे उनके लिए पैसों की ही जरूरत अगर हमें रहती हो तो हमें काम करना नहीं आता, ऐसा मानना चाहिए। सेवा के कामों के लिए तो परिश्रम की, मेहनत की और बुद्धि की मुख्य जरूरत होती है। पैसों का भी कुछ उपयोग हो सकता है। लेकिन पैसे

का आश्रय नहीं होना चाहिए। हमारा कार्य अपने ही आधार पर स्वतंत्र रूप से खड़ा होना चाहिए। उसमें पैसे की मदद मिले तो ठीक ही है, न मिले तो उसके बिना हमारा काम रुकेगा नहीं, ऐसी रचना होनी चाहिए। यह पहली विवेक करने की बात हुई।

दूसरी बात इस संबंध में यह है कि जिसके पास से मुझे पैसे मिले हैं वे उसने बुरे मार्ग से कमाए हैं या अच्छे मार्ग से, इसका फैसला करने का अधिकार मेरा नहीं है। हां! पैसा देते समय वह अगर उसमें से कुछ नाम कमाना चाहता हो तो हम उस पैसे को नहीं लेंगे। एक भाई मुझे हरिजनों के काम के लिए पैसा देने को तैयार हुआ। लेकिन उसने सुझाया कि इस पैसे से जो कुआं बनेगा उसको मेरा नाम दिया जाय। मैंने कहा, "नाम देकर क्या करोगे? क्या उस कुएं में डूब कर मरना है? वर्धा में राम नायडू के नाम से शहर का एक हिस्सा बढ़ाया गया है, जिसको रामनगर कहते हैं। शहर के बाहर एक हनूमान टेकड़ी भी है। वहां मैं घूमने के लिए जाता था। अपने साथ के भाई को मैं समझा रहा था कि हम जहां पर खड़े हैं वह जानकी टेकरी है, पड़ोस की जो दूसरी टेकड़ी है वह लक्ष्मण टेकरी है, और उसके बाजू की हनूमान टेकड़ी है। पहली दो टेकरियों के नाम मेरे रक्खे हुए थे। उस भाई ने कहा, यह बड़ा अच्छा है। इधर रामनगर, उसके पास जानकी टेकरी, लक्ष्मण टेकरी और हनूमान टेकरी। मैंने कहा, 'रामनगर' नाम तो राम नायडू के नाम पर से पड़ा है।" लेकिन उस राम नायडू को अब कौन

जानता है ? वह तो राम में डूब गया । इन कंबख्तों के बाप अपने लड़कों को भगवान का ही नाम दे देते हैं ।

एक नाटक कंपनीवाला मेरे पास आकर कहने लगा, नाटक के एक खेल का पैसा मैं आश्रम को देना चाहता हूं । मैंने कहा, पैसे तो वैसे मैं ले लेता, क्योंकि किसी पैसे पर नाटक कंपनी का नाम थोड़े ही लिखा होता है । लेकिन अपने पैसों का परिचय दिए बगैर आप दे देते तो मैं ले लेता, अब नाटक कंपनी के नाम से मुझे पैसे नहीं चाहिए ।

मतलब, जिस पैसे को स्वीकार करने से पाप की प्रतिष्ठा बढ़ती है या दोषी जीवन का रंग चढ़ना संभव है, ऐसा पैसा नहीं लेना चाहिए । लेकिन बतौर प्रायश्चित्त के कोई देगा तो मैं ले लूंगा । हर एक मनुष्य पुण्य करता है और पाप भी करता है । दूसरों के पाप-पुण्यों का फैसला करनेवाला काजी बनना मेरा काम नहीं है । गांधीजी के स्मारक फंड में जो लोग पैसा देंगे उनमें श्रीमान् भी होंगे, लेकिन गरीब भी बहुत होंगे । गांधीजी का तरीका ही यह था कि वे गरीब के पास से भी पैसा जमा करते थे, और उसीको महत्त्व देते थे । और आखिर श्रीमान् का पैसा भी गरीबों का ही तो है ! गरीबों से उसने लूट लिया था । तो उसको भी मैं अहिंसक तरीके से क्यों न लूटूँ । उसके पैसे का उपयोग जब हम शुद्ध काम में करते हैं तो उसको भी हम शुद्ध कर देते हैं । "अमेध्यादपि काञ्चनम्" कहा ही है । कीचड़ से भी कांचन को लेना यह तो सज्जनों की रीति ही है । पापी का पैसा पुण्य-कार्य में लगाने से उसके पाप का भी छेदन हो जायगा । मिलवालों से लिया हुआ

पैसा जब मैं खादी-काम में लगाता हूं तब मिलों की हस्ती पर ही मैं हमला करता हूं। हमारे समाजवादी मित्र, 'मिलें देश की मिल्कियत बननी चाहिए' ऐसा कहते हैं। मैं भी यह चाहूंगा। लेकिन मैं उनसे कहता हूं, वह तो जब होगा तब होगा, लेकिन तबतक क्या करोगे? तबतक मिल का कपड़ा पहनकर क्या अपने हाथों से उनको मदद देते रहोगे? हम सब खादी पहनेंगे तो उनकी मिलें ही टूट जायंगी। फिर वे शरण आयंगे। उसके बाद मिलों की व्यवस्था कैसी करनी चाहिए यह मैं उनको समझाऊंगा।

प्रश्न : आठ घंटे चरखा चलाने से जो पैसा मिलता है उतने में कत्तिनों का गुजारा नहीं होता, इसलिए लोग चरखा नहीं चलाते, पूरी रोजी मिलने लगे तो शायद सब देहातों में चरखे चलने लग जाएंगे।

उत्तर : इसका जवाब बिलकुल सरल है। मैं दिन में घंटा डेढ़ घंटा रोज घूमता हूं। अगर मैं आठ घंटे भी घूमूं तो क्या उससे मुझे रोजी मिलनेवाली है? घूमने से हवा खाने को मिलेगी, रोटी कैसे मिलेगी? अगर मैं आम बोता हूं तो उसमें से केले कैसे पाऊंगा? मेरे कहने का मतलब यह है कि सूत कातने से कपड़ा मिल सकता है, रोटी कैसे मिलेगी? चरखा-संघ ने चरखे से रोटी का संबंध कुछ जोड़ दिया है। लेकिन चरखे का मुख्य काम रोटी देना नहीं है, कपड़ा देना है। और यह कोई छोटी बात नहीं है। लोग कहते हैं कि मनुष्य की पहली आवश्यकता अन्न है और दूसरी वस्त्र। लेकिन एक तरह से वस्त्र को पहली जरूरत समझना

चाहिए। हम एकाध दिन फाका तो कर लेते हैं, लेकिन नग्न एक दिन भी नहीं रहते। कपड़ा ठंड से और हवा से बचाता है इतना ही नहीं, वह हमारी लज्जा की भी रक्षा करता है, और यही कपड़े का आज के समाज में मुख्य उपयोग है। वह मनुष्य की सभ्यता की निशानी बन गया है। इस लिहाज से कपड़े को मनुष्य की पहली आवश्यकता समझनी चाहिए। वह चरखा पूरी कर देता है। इससे अधिक चरखे से क्या अपेक्षा रखेंगे? मनुष्य की नग्नता को ढांकना यह चरखे का दावा है।

प्रश्न : खादीभंडार में खादी खरीदनेवालों के लिए सूत-शर्त रक्खी गई है। लेकिन ईमानदारी से खुद का कता सूत देनेवाले बहुत कम लोग भंडार में आते हैं। इस सूत-शर्त को क्यों न हटा दिया जाय?

उत्तर : आपकी तसल्ली के लिए पहले तो मैं कह देता हूं कि चंद रोज में खादी-बिक्री पर से सूत-शर्त उठ जायगी।

लेकिन मैं आप लोगों से कह देना चाहता हूं कि चरखा-संघ के भंडारों में से कपड़ा खरीदने की ही हम सोचते रहेंगे तो खादी टिकनेवाली नहीं है। देहाती लोगों को तो अपने लिए खादी पैदा ही करनी है, जैसे वे अन्न पैदा करते हैं। शहरवाले अन्न तो पैदा ही नहीं कर सकते, कम-से-कम वस्त्र तो अपने घरों में पैदा करें! उससे उनके जीवन में कुछ विविधता भी आएगी। लगातार एक ही काम करते रहने में मनुष्य को आनंद नहीं होता। वे अगर अपने घर में चरखा चलाएंगे तो उनके लिए वह एक आनंद का साधन बनेगा।

उससे कुटुंब में परस्पर सहकार भी बढ़ेगा। एक कपास ओट देगा, दूसरा उसकी पूनी बनाएगा, तीसरा कातेगा, चौथा उसका दुबटा करेगा, इस तरह चलेगा। सूत, दुबटने पर बुनना एक खेल-सा हो जाता है। मैं तो कहूंगा कि फिर घर में एक करघा भी लगा सकते हैं। महीने भर में घर का सारा कपड़ा बुन सकते हैं।

आपके घरों में पानी के लिए पाइप लगे हैं, लेकिन क्या वे बारिश की बूंद की योग्यता रखते हैं? बारिश की बूंद छोटी भले हो, पर वह सब जगह गिरती है इसलिए उसकी योग्यता महान् है। चरखे में यही खूबी है। चरखा थोड़ी थोड़ी संपत्ति सब घरों में देगा। अर्थशास्त्र का सबसे महत्त्व का सिद्धांत, संपत्ति की तकसीम ठीक हो, यह है। चरखा अपने आप उस सवाल को हल कर देता है।

पूंजीवालों के पंजे से आप छूटना चाहते हैं तो चरखे को चलाइए। घर में मां बच्चे को चरखे के जरिए देश-प्रेम सिखा सकती है। बचपन में नाश्ते के लिए मैं जाता तो मां मुझे कहती, "पहले तुलसी को पानी दे, फिर नाश्ता मिलेगा।" इसी तरह बच्चे की धर्म-भावना का पोषण किया जाता है। (तुलसी का छोटा पेड़ रहता है। उसको हर रोज पानी डालने में हिंदू-कुटुंब धर्म-भावना समझता है) वैसे ही हर रोज मां बच्चे को देश के लिए चरखा कातने को कहेगी तो देश-प्रेम बढ़ेगा। हर रोज परिश्रम में कुछ-न-कुछ हिस्सा लेना है, यह समझ कर कातेंगे तो गरीबों से हमारा अनुसंधान रहेगा।

प्रश्न : आजादी मिलने के पहले लोगों में कांग्रेस के लिए जो प्रतिष्ठा थी वह अब नहीं रही है। लोगों के पास विधायक कार्य लेकर हम जाते हैं तो वे कहते हैं कि अब अपनी सरकार है, वह पैसा भी खर्च कर सकती है जो काम आप चलाना चाहते हैं, सरकार की मारफत चलाइए।

उत्तर : कांग्रेस की प्रतिष्ठा पहले क्यों थी ? इसलिए कि कांग्रेस में उस समय त्याग की बात थी। हम अब त्याग को भूल गए हैं। आजादी तो हमने हासिल की, लेकिन अब उसे खोने के कार्यक्रम की हम सोच रहे हैं। हमने समझा हमारी पूर्णिमा तो हो गई, अब क्या करना ? तो अमावस्या की ओर हम बढ़ रहे हैं। कांग्रेस में अब भोग की बात आने लगी है। सरकार के पास बहुत-सा पैसा पड़ा है, यह समझना भी गलत है। अंग्रेजों ने हिंदुस्तान को यह दूकान तब सौंपी जब वह गिर चुकी थी। उसकी 'गुड् विल' नेकनामी नहीं बल्कि 'बैड विल' बदनामी हमें मिली है। इसलिए अपनी सरकार के दोष ही निकालने बैठेंगे तो बहुत निकल आयेंगे। इतना विश्वास रक्खो कि अपने में से अच्छे लोग चुनकर हमने सरकार में भेजे हैं। उनके काम की पूर्ति हमें करनी चाहिए।

वह पूर्ति कैसे हो सकती है ? कांग्रेस का यह दावा था कि हिंदुस्तान में गरीबों का राज कायम करेंगे। हमें जो आजादी मिली है उसे गरीबों के पास पहुंचाना है। सरकार के पास कितना पैसा है ? तीस करोड़ लोग हिंदुस्तान में हैं। उस हिसाब से फी आदमी सरकार कितना खर्च कर

सकती है ? सार्जंट-कमेटी ने बच्चों की पढ़ाई का एक ४० साल का प्रोग्राम बनाया। उसमें खर्च इतना बतलाया कि वह प्रोग्राम अमल में लाना नामुमकिन था। गांधीजी ने कहा, "शिक्षा का यह तरीका ही गलत है। बच्चा शिक्षा पाते समय अगर निकम्मा रहता है तो शिक्षा पाने के बाद भी वह निकम्मा ही रहेगा। शिक्षा के पहले तो वह निकम्मा था ही, शिक्षा पाते हुए भी निकम्मा रहा, तो शिक्षा पाने के बाद भी वैसा ही रहेगा।" इसलिए उन्होंने फिर ऐसा तरीक़ा सुझाया, जिससे बच्चा तालीम पाते-पाते तालीम के खर्च का बड़ा हिस्सा निकाल सके। वह तरीका भी ऐसा कारगर कि उससे बच्चे को तालीम भी अच्छी मिले। उद्योग के जरिए तालीम अच्छी दी जाती है, इसमें क्या शंका हो सकती है ? लेकिन कुछ लोग पूछते हैं, "आप तो बच्चों से मजदूरी करवाते हैं।" मैंने पूछा, "तो फिर क्या यह करूं, कि बच्चा चक्की तो घुमाता रहे, लेकिन अंदर गेहूं न डाले ? बच्चा अगर कुछ पैदा करता है तो क्या पाप करता है ? बच्चा काम करते-करते तालीम भी पाएगा और कुछ पैदा भी करेगा।

संपत्ति के उत्पादन में हर एक का हिस्सा होना चाहिए। तभी हिंदुस्तान टिकेगा। रवि बाबू ने कहा है, "संपत्ति का विभाजन हम सब करते हैं, लेकिन गुणन का भार चंद लोगों पर पड़ता है।" गांधी जी ने संपत्ति के गुणन का आसान तरीका बताया, चरखा और ग्रामोद्योग। लेकिन मैं चरखे की बात करता हूं तो यहां के शरणार्थी कैंपवाले पुरुष कहते हैं "यह तो स्त्रियों का काम है।" रसोई करना भी पुरुषों

का काम नहीं, रसोई खाना पुरुषों का काम है। वाह रे पुरुष! रसोई करना स्त्रियों का काम और खाना पुरुषों का काम, ऐसा ही भगवान को मंजूर होता तो उसने स्त्रियों को चार हाथ दिए होते और पुरुषों को दो मुंह दिए होते। लेकिन उसने जो किया सो किया। वैसे ही आटा पीसने का काम है। घर में आटा पीसने की बात यहां दिल्ली में मैं करूंगा तो मुझे शायद लोग पागल ही समझेंगे। लेकिन मैं देखता हूं कि दिल्लीवाले भी रोटी खाते हैं, जैसे देहातवाले खाते हैं। "न वै देवा अश्नन्ति, न पिबन्ति, अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति" ऐसा दिल्लीवालों का हाल होता तो उनको चक्की चलाने को कहने में मैं डरता। लेकिन वैसा नहीं है। इसलिए यहां भी मैं घर में आटा पीसने की बात कहूंगा। घर में आटा तैयार होगा, घर में कपड़ा पैदा होगा तो घर में संपत्ति रहेगी। यही ग्रामोद्योग का प्रोग्राम है। उसे चलायंगे तभी गरीब जनता स्वतंत्र होगी।

स्वतंत्र वही हो सकता है जो अपना काम आप कर लेता है। लोकमान्य तिलक ने हमको उत्साहित करने के लिए कहा था "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध हक है" लेकिन दरअसल अगर वह जन्मसिद्ध हक होता तो जन्म लेते ही हमें वह मिल जाता। लेकिन हम देखते हैं कि बच्चे का जन्मसिद्ध हक तो परतंत्रता है। हर बात के लिए उसे मां-बाप पर निर्भर रहना पड़ता है। हमें समझना चाहिए स्वतंत्रता जन्मसिद्ध हक नहीं, कर्म-सिद्ध हक है।

यह एक क्रांतिकारी कार्यक्रम है। उसमें हवा बदलने

की बात है। सरकार अकेली वह नहीं कर सकेगी। वह हो सके तो उसमें मदद पहुंचाएगी, बाधा नहीं डालेगी उतना भी मैं काफी समझूंगा। यह काम हमें करना है। वह हम करें, और सरकार के दोष न ढूंढ़ें। वे तो बिना ढूंढ़े ही मिलेंगे। यह घर हम सबका है ऐसा मानकर एक दूसरे के काम की पूर्ति करनी चाहिए।

प्रश्न: वर्धा में अभी आपने जो सर्वोदय समाज कायम किया है उसका सदस्य कौन हो सकता है? उसके लिए नियम क्या हैं? आदि बातें जानना चाहता हूं।

उत्तर: यह सवाल ठीक पूछा। सर्वोदय समाज यानी मानव-समाज। उसका एक ही उद्देश्य है—सबकी उन्नति करना और उसके लिए जो भी साधन इस्तेमाल किये जायं वे सत्य-अहिंसायुक्त हों। अपने निजी और सामाजिक जीवन में और सार्वजनिक कार्यों में कभी झूठ और हिंसा का उपयोग न करें। जो इस उसूल को मानते हैं वे सब इस समाज के सेवक हैं। इस समाज में न हुकूमत है, न कृत्रिम संगठन की बात है और न इसका कोई चुनाव ही है। इस समाज का सदस्य जो भी काम करेगा, अपने नाम से करेगा। वह अकेला भी काम कर सकता है, और संस्था बना कर भी मार्ग-दर्शन के लिए कुछ काम बताए हैं उनमें से जो काम उसे अनुकूल होगा वह करेगा। और भी जो काम वह करना चाहे, कर सकता है। अगर वह सत्य-अहिंसा की मर्यादा में रह कर काम करता है तो वह सर्वोदय-समाज का सेवक है। इसलिए हमें आत्म-संशोधन करना चाहिए, दिल को

टटोलना चाहिए। आज तक जो हुआ सो हुआ। अब इससे आगे कभी असत्याचरण नहीं करूंगा, हिंसा नहीं करूंगा, यह प्रतिज्ञा उसे लेनी है। जब इस तरह प्रतिज्ञा करने के लिए लोग तैयार हो जाएंगे तो यह सर्वोदय-समाज पृथ्वी पर आ जायगा, नहीं तो स्वर्ग में तो वह पड़ा ही है।

प्रश्न : हिंदू-मुसलिम एकता के लिए हम प्रयत्न करते हैं। लेकिन मुसलमान गुंडे आजकल फिर मुहल्लों में नारे लगाने लगे हैं। इस स्थिति में हम क्या करें ?

उत्तर : जहां ऐसा हो रहा हो वहां हमें पहुंचना चाहिए। लेकिन पहले यह समझ लो कि गुंडे सिर्फ मुसलमानों में ही हैं, ऐसी बात नहीं है। हिंदुओं में भी गुंडे लोग होते हैं। गुंडों की अपनी एक अलग जमात है। इसलिए जिस तरह हम हिंदू गुंडों का बंदोबस्त करेंगे वैसे ही मुसलमान गुंडों का भी करें। लेकिन किसीको पहलेसे ही गुंडा न समझें। वहां पहुंचकर ठीक जांच करें और जब निश्चित पता चल जाय तो सरकार की मारफत या गांववालों की मारफत उनका बंदोबस्त करें।

प्रश्न : आजकल शरणार्थियों को घरों की बड़ी तंगी है। किसीके घर में जगह है तो वह उनसे पगड़ी मांगता है। उनके पास पैसा भी नहीं है। जबतक मकानों की व्यवस्था नहीं होती तब तक शरणार्थियों को दिल्ली से जाने के लिए हम कैसे कहें ?

उत्तर : समस्या कठिन तो है। उसका हल एक मिनिट में मैं यहां नहीं बता सकूंगा। इस विषय में सरकार तो कोशिश कर ही रही है। लेकिन दिल्ली के नागरिक इसमें क्या कर

सकते हैं यह मैं बता दूं। दिल्ली के नागरिक शरणार्थियों में जायं, उनसे परिचय करें, उनके साथ बैठकर उनके दिल की बातें समझ लें। परिचय के बाद जो लोग अपने स्वभाव के अनुकूल मालूम हों उनको बतौर पड़ोसी के अपने पास रहने की जगह दें। दया के काम हर एक को करने चाहिएं। मिलिटरी का जैसे कोई विभाग होता है वैसे दया का महकमा खोलकर हम निश्चिंत होकर नहीं बैठ सकते। हर एक के दिल में दया रहनी चाहिए। शरणार्थियों को अपने घर में स्थान देने में कुछ खतरा भी हो सकता है। लेकिन विवेक से काम लेना चाहिए और खतरा उठाना चाहिए। बिना खतरा उठाए हम कोई भी बड़ा काम नहीं कर सकेंगे।

श्री जैन महावीर मंदिर, दिल्ली

४-४-४८

: ५ :

सच्चा धर्म

आज आप लोगों को देख कर मुझे बहुत खुशी हुई है, क्योंकि आप लोग देहाती हैं और मैं भी देहात का हूं। मैं जब कभी शहर में जाता हूं तो लगता है कि किसी दूसरे के घर में आ गया हूं। लेकिन देहात में अपना घर महसूस करता हूं। दूसरी खुशी इस बात से हुई है कि यहां औरतें भी सभा में आई हैं। ऐसा ही होना चाहिए। स्त्री और पुरुष संसार

की गाड़ी के दो पहिए हैं। संसार में सब काम दोनों को मिल कर करने चाहिएं। विद्या प्राप्त करनी हो, धर्म का आचरण करना हो, यात्रा करनी हो, गांव का काम करना हो तो स्त्री और पुरुष मिल कर ही करें।

आप लोगों को एक बात मैं शुरू में बता दूं। आप अपने देहातों को शहर की हवा से बचाइए। अभी जो बुराइयां हुई हैं वे सब शहर की हवा से हुई हैं। देहात के अनपढ़ और गरीब लोग उसमें फंस गए हैं। देहातों में शहर से लोग आते हैं, उन्हें बहकाते हैं, उनमें फूट डालते हैं और झगड़े फैलाते हैं। शहरवाले आकर यदि ऐसी बातें करने लगें तो हम उनसे साफ कह दें कि "मेहरबानी करके आप यहां से जाइए। शहर के झगड़े हमारे यहां न लाइए।"

गांववालों को हाथ की पांच अंगुलियों की तरह रहना चाहिए। हाथ की पांचों अंगुलियां समान थोड़े ही हैं? कोई छोटी है, कोई बड़ी है। लेकिन हाथ से किसी चीज को उठाना होता है तब पांचों इकट्ठी होकर उठाती हैं। हैं तो पांच, लेकिन हजारों काम कर लेती हैं; क्योंकि उनमें एका है। उनमें अगर आपस में झगड़ा चलता तो कुछ काम ही नहीं हो पाता। हमारे यहां कहावत है न? "पांच बोले परमेश्वर"। गांव के पांच लोग जब हमराय होकर बोलते हैं तब वह परमेश्वर ही बोलता है। लेकिन पांच में से तीन एक बात कहें और दो दूसरी बात कहें तो वह परमेश्वर की वाणी नहीं बनती। इसलिए अगर गांव का भला चाहते हैं तो सब मिल-जुल कर काम करेंगे, पहले यह बात पक्की कर लीजिए।

मैंने सुना कि यहां हिंदुओं के साथ कुछ मुसलमान भी रहते हैं। यह सुनकर खुशी हुई। लेकिन मुसलमानों के साथ-साथ कुछ सिख, पारसी और ख्रिस्ती भी होते तो मुझे और खुशी होती। भगवान का भजन करने का हर एक का तरीका अलग-अलग है, और हर एक के तरीके में कुछ खूबियां भी हैं। जब ये सब गांव में अपने-अपने तरीके से भजन करते हैं और प्रेम से रहते हैं, तो बड़ा आनंद आता है। सितार में सातों सुर अलग-अलग होते हैं, लेकिन सातों के मिलने पर सुंदर संगीत बन जाता है। एक ही सुर रहता तो उस सितार को सुनने में क्या आनंद आता?

हिंदुओं में भी देखो न, विष्णु की पूजा, शंकर की पूजा, गणपति की पूजा, देवी की पूजा, आदि कितने ही देवताओं की पूजा चलती है। लोग कहते हैं 'यह क्या देवों का बाजार लगा दिया?' मैं कहता हूं "रुचि अलग-अलग है तो बाजार भी होना चाहिए। भोजन में रोज रोटी ही मिलती रहने पर कोई दूसरी चीज खाने की आपको इच्छा होती है या नहीं? उसी तरह अगर अलग-अलग नामों से परमेश्वर की पूजा चली तो गांववालों का उतना ही आनंद बढ़ गया समझो। परमेश्वर के अनंत रूप हैं, अनंत नाम हैं। किसीके चार लड़के होते हैं तो चारों के नाम भी अलग-अलग रक्खे जाते हैं। वैसे भगवान के एक रूप का नाम है विष्णु और एक का नाम है कृष्ण। तो कोई विष्णु का नाम लेगा, कोई कृष्ण का नाम लेगा। उसमें हमारा क्या बिगड़ता है? सारे भक्ति तो एक ही भगवान की करते हैं न? हरेक अपनी-अपनी रुचि

के अनुसार नाम लेता है तो हृदय को तसल्ली होती है।

इसलिए मुसलमान अगर अपने तरीके से भगवान का भजन करते हैं तो हम क्यों उनको कहें कि तुम चोटी रख कर हिंदू बन जाओ ? हिंदू बनने का भी बड़ा आसान तरीका लोगों ने निकाला है। कहते हैं कि सूअर की हड्डी चूस ली तो हो गया हिंदू ! इतना आसान अगर हिंदूधर्म होता तो फिर ऋषि-मुनियों की जरूरत ही क्या थी ? यह क्या हिंदू-धर्म है ? हिंदू-धर्म की यह घोर निंदा है। हिंदू-धर्म कभी किसी को अपना धर्म छोड़ने को नहीं कहता। गीता में भगवान ने कहा है कि जिसका जो धर्म है, वही उसके लिए सबसे श्रेष्ठ है। अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए हर एक को अच्छा इन्सान बनना चाहिए। आज इन्सानियत हिंदुओं ने भी छोड़ी है और मुसलमानों ने भी। दोनों झूठ बोलते हैं, खून करते हैं, गरीबों को चूसते हैं, और फिर भी उनका धर्म नहीं बिगड़ता। धर्म की असली बात छोड़ कर धर्म के नाम पर धर्म-विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। दया, सत्य और प्रेम यही सच्चा धर्म है। इन्सानियत बढ़ाना, प्रेम रखना, झगड़ों को मिटाना, यही धर्म का कार्य है।

बखतावरपुर, दिल्ली
६–४–४८

: ६ :

गरीबी अपनावें

शाम का समय, जब सूर्यनारायण अस्ताचल की ओर जाते हैं, और हमारे जीवन का एक हिस्सा समाप्त होता है, बहुत पवित्र है। ऐसे समय चिंतन करना, भगवान का नाम लेना, और सबका मिल कर उपासना करना अच्छा लगता है। जो भाई यहां आये हैं, उनसे मैं प्रार्थना करूंगा कि वे इस उपासना में नियमित आया करें; और अपने साथ मित्रों को भी लाया करें क्योंकि यह ऐसा मिष्ट भोजन है, जिसमें अगर हम शरीक होते हैं तो दूसरों को भी हमें दावत देनी चाहिए।

यह राष्ट्रीय सप्ताह कहलाता है। हमारे लिए पारमार्थिक काम करने का यह सप्ताह है। २९ साल पहले का जिक्र है, जब कि, अभी जो नौजवान हैं उनमें से बहुतों का जन्म भी नहीं हुआ था, सारे हिंदुस्तान में इस सप्ताह ने प्राण का संचार कर दिया था। तब से हर साल हम यह सप्ताह मनाते हैं।

इस साल गांधी-स्मारक-कोष के लिए पैसे इकट्ठा करने का काम इस सप्ताह में शुरू किया गया है। अच्छा है, जो लोग पैसा देंगे, कुछ त्याग-भावना सीखेंगे। लेकिन असली काम पैसे से नहीं होगा। सेवा-कार्य का पैसे से कम-से-कम संबंध है। पैसे से सार्वजनिक काम बिगड़ भी सकता है। उसका बहुत जागृत होकर उपयोग करना पड़ता है। सेवा के लिए पैसे की जरूरत नहीं होती। जरूरत है अपना संकुचित जीवन

छोड़ने की, गरीबों से एकरूप होने की ।

पुरानी कहानी है । याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियां थीं । एक सामान्य, संसार में आसक्ति रखनेवाली और दूसरी विवेक-शाली, जिसका नाम मैत्रेयी था । याज्ञवल्क्य को लगा कि अब घर छोड़ कर, आत्मचिंतन के लिए बाहर जाना चाहिए । जाते समय उन्होंने दोनों पत्नियों को बुलाया और कहा, "अब मैं घर छोड़ कर जा रहा हूं । जाने से पहले जो भी संपत्ति है, आप दोनों में बांट दूं ।" तब मैत्रेयी ने पूछा, "क्या पैसे से अमृत-जीवन प्राप्त हो सकता है ?" याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया, "नहीं ! अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन" ।—वित्त से अमृतत्व की आशा करना बेकार है । उससे तो वैसा जीवन बनेगा, जैसा कि श्रीमानों का होता है । वह तो मृत-जीवन है । अमृत-जीवन की अगर इच्छा है तो आत्मा की व्यापकता का अनुभव करो, सबकी सेवा करो, सबसे एकरूप हो जाओ ।"

कांग्रेस ने दावा किया था कि वह गरीबों का राज्य चाहती है । अगर हम गरीबों का राज्य चाहते हैं, गरीबों की सेवा करना चाहते हैं तो हमें गरीबों की मनोवृत्ति को समझना चाहिए, उनसे एकरूप होना चाहिए । वीर-पूजा जैसे वीर बनकर ही हो सकती है, वैसे ही गरीबों की सेवा गरीब बन कर ही हो सकेगी । इसलिए इस सप्ताह में हम गरीब बनने की कोशिश करें ।

कल की बात है । मैं कुरुक्षेत्र गया हुआ था । आप जानते हैं कि आजकल मैं शरणार्थियों की सेवा में घूम रहा हूं ।

कल कुरुक्षेत्र की बारी थी। पंडित जी के साथ गया था। कुरुक्षेत्र, कई पवित्र भावनाओं का स्मरण दिलाता है। गीता का स्मरण तो होता ही है। क्योंकि वहीं पर भगवान ने अर्जुन को गीता का संदेश दिया था। उसकी जगह भी वहां बताते हैं। उसे भी देखने मैं गया था। मेरा दिल भर आया। उस स्थान में खास तो कुछ नहीं था। कुछ पेड़ थे और वही पंचभूत, जो सारी दुनिया में भरे हैं वहां भी थे। परमेश्वर भी, अगर हम उसे देखते हैं, वही था जो सब जगह मौजूद है, लेकिन भावना की बात होती है, जिससे कहीं कुछ अनुभूति आती है। उसी कुरुक्षेत्र में आज गीता की शिक्षा से उल्टी बात चल रही है। गीता ने सिखाया है कि विना काम किए खाने का मनुष्य को अधिकार नहीं। कर्म ही मनुष्य के जीवन को पवित्र और अहिंसक बनाता है। लेकिन वहां तो महीनों से मुफ्त रसद (राशन) दी जा रही है। मैंने सोचा अगर इतने लोगों को यकायक काम देना मुश्किल हो रहा है तो अगर उन्हें चक्कियां दी जातीं तो कम-से-कम अपना अनाज तो वे पीस ही सकते थे, फिर तैयार आटा उन्हें क्यों दिया जा रहा है? यह सादी बात किसीको नहीं सूझी, क्यों? इसलिए कि हम जो वहां काम कर रहे हैं उनके ही जीवन में चक्की कहां आई है? मनुष्य को अपने जीवन के बाहर की कल्पना करना मुश्किल होता है। इसीलिए मैंने कहा है कि गरीबों की सेवा करने के लिए गरीब बनना चाहिए। तुलसीदासजी ने अपने भजन में गाया है "नाथ गरीब-निवाज हैं, मैं गही न गरीबी"—हे नाथ! आप तो गरीबों का पालन करनेवाले हैं। लेकिन मैंने गरीबी

को अपनाया नहीं है तो आपके पास मेरा पालन कैसे होगा ?

इसलिए इस राष्ट्रीय सप्ताह में हमें गरीबी का व्रत ले लेना चाहिए। गरीबी का मतलब है शरीर-परिश्रम को अपनाना। शरीर-परिश्रम टालने से ही दुनिया में साम्राज्य-शाही और दूसरी अनेक शाहियां पैदा हुई हैं। उन सबका हमें विरोध करना है तो गरीबी का अपने जीवन में आरंभ कर देना चाहिए। घर में चक्की न हो तो दाखिल कीजिए। चरखा शरीर-परिश्रम के लिए गांधी जी ने बताया, जिसे बच्चा, बूढ़ा, सब कोई चला सकते हैं। गरीबों से तन्मय होने की वह निशानी है। लेकिन अगर हम चरखा कातते हैं, और बाकी का हमारा जीवन वैसा-का-वैसा रह जाता है तो हमारा काम नहीं बनता है। हमें तो मजदूर बनना है, भंगी बनना है, गांव-गांव में जा कर सफाई का काम करना है। इस सप्ताह में ऐसा कुछ आरंभ कर दीजिए। हमें तुलसी-दास जी के जैसी व्याकुलता होनी चाहिए कि कब हम गरीब बनेंगे और कब हमारा ईश्वर से पालन होगा !

राजघाट, दिल्ली
शुक्रवार ९–४–४८

: ७ :

सिंधी विद्यार्थियों से–

मैं आज ही अजमेर पहुंचा हूं। पहुंचते ही विद्यार्थियों

के बीच में बोलने का मुझे मौका मिला, उससे मुझे खुशी हुई। आप सिंध में जो विद्या पाते थे, वही सिलसिला यहां भी चलेगा। मैं तो मानता हूं कि उससे कुछ अच्छा ही चलेगा। आज के जो विद्यार्थी हैं, वे कल के नागरिक होनेवाले हैं। उन पर जिम्मेवारी है कि वे अच्छी विद्या हासिल करें, जिससे उनका और देश का भला हो।

एक बात मैं विद्यार्थियों से कहना चाहता हूं और वह यह कि हिंदुस्तान की विद्या एक ही है और वह है आत्मविद्या। वह सबसे श्रेष्ठ है। उसीकी प्राप्ति के लिए दूसरी सारी विद्याएं हैं। उसीके लिए ब्रह्मचर्याश्रम है। उसीकी प्राप्ति से दूसरी सारी विद्याएं चरितार्थ होती हैं। वरना सब निकम्मी हो जाती हैं। इसलिए आप सिंधी-विद्या, हिंदी-विद्या, गुज-राती-विद्या ऐसा भेद न करें। हो सकता है कि सिंधी का उतना उत्तम अभ्यास यहां नहीं हो सकेगा, लेकिन उसके बदले में आप हिंदी का अभ्यास करेंगे तो कुछ खोएंगे नहीं। हिंदी और सिंधी में ज्यादा फर्क भी नहीं है। शाह लतीफ की कविता अगर नागरी में छप जाय तो हिंदीवाले उसे अच्छी तरह पढ़ सकेंगे। मैंने सिंधी का भी थोड़ा अभ्यास किया है। मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि उत्तर हिंदुस्तानवाली मारवाड़ी, पंजाबी, सिंधी आदि भाषाएं एक तरह से हिंदी की बोलियां जैसी हैं। सिंधी और हिंदी दोनों संस्कृत से पैदा हुई हैं। अगर लिपि की रुकावट न रही तो कोई भी सिंधी आठ दिन के अंदर हिंदी सीख सकता है। हजारों शब्द दोनों में समान हैं। क्रियापद भी बहुत-से समान हैं। इसलिए सिंधीवाले

हिंदी का अभ्यास करेंगे तो उन्हें बहुत फर्क नहीं मालूम होगा। सिंधी सीख कर आप अगर सिंधु नदी में प्रवेश करते हैं तो हिंदी सीख कर आप समुद्र में प्रवेश करेंगे। हिंदी सीखने से भारत के व्यापक साहित्य में आपका प्रवेश हो जाता है। उससे आप हिंदुस्तान की अच्छी सेवा कर सकेंगे। हिंदी का उत्तम अभ्यास करके आपको हिंदीवालों में इस तरह मिल जाना चाहिए जैसे दूध में शकर। दूध का नाम लिया जाता है, लेकिन शकर अपना काम करती है। असली चीज तो काम ही है।

सिंधी लोग साहसी होते हैं, देश-परदेश जहां जाते हैं, वहांकी भाषा जल्दी सीख लेते हैं। इसीलिए तो वे उत्तम व्यापार करते हैं। ये गुण यहां भी आप दिखा दें और यहां के वातावरण में एकरूप हो जायं। कहावत है कि रोम में जायं तो रोम जैसा बनना चाहिए। यहांके रीतिरिवाज आपके रीति-रिवाज से कुछ भिन्न हैं। लेकिन यहांपर आपको अपने रिवाज का आग्रह नहीं रखना चाहिए। भारतमाता की सेवा करनी है तो भारतीय बनना चाहिए। सिंधी का प्रेम जरूर रखिए पर सिंधी का अभिमान मत रखिए। प्रेम और अभिमान में मैं फर्क करता हूं। अभिमान रखना ही है तो भारतीय होने का रखिए। उसमें भी दुरभिमान नहीं होना चाहिए। हम सब इन्सान हैं इसको नहीं भूलना चाहिए।

कल से आपको गरमी की छुट्टी मिलनेवाली है। यह छुट्टी केवल अंग्रेजों का अनुकरण है। हमारे अंग्रेज प्रोफेसर गर्मी सहन नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्हें छुट्टी की जरूरत थी। वे विद्यार्थियों को भी छुट्टी दे देते थे। लेकिन ज्ञान

की छुट्टी कैसी ? खाने की कभी छुट्टी नहीं रहती। मनुष्य को अन्न से भी ज्ञान की आवश्यकता अधिक है। गर्मी की लंबी छुट्टी में अंग्रेज प्रोफेसर ठंडी जगह जाते थे, हमारे शिक्षक और विद्यार्थी कहां जानेवाले हैं ? वे तो यहीं घर पर रहेंगे। उससे तो विद्यालय की बिल्डिंग में टेंपरेचर कम रहेगा और अभ्यास में गर्मी का पता भी नहीं चलेगा। इसलिए मेरी राय में छुट्टी की कोई जरूरत नहीं है। अगले साल से इस बात पर सोचिए। अगर छुट्टी देनी है तो बारिश के मौसम में निंदाई (निरौनी) के समय पर दे सकते हैं। जिससे विद्यार्थी खेती में कुछ काम कर सकेंगे। गर्मी में कुछ काम भी नहीं होता है। इसलिए विद्यार्थी यह मांग करें कि हमें अपना जीवन नष्ट नहीं करना है। हमें गर्मी की छुट्टी नहीं चाहिए। विद्या के बिना हम नहीं रहना चाहते। लेकिन अगर छुट्टी रहती है तो मैं विद्यार्थियों से कहूंगा कि वे समय व्यर्थ न गंवाएं। वे अपनी विद्या को बढ़ाते रहें और स्कूल में जो सीखने को नहीं मिला वह इन दिनों में सीखें।

अजमेर
९-४-४८

: ८ :

इस्लाम की सिखावन

आज मैं इस पाक मौके पर आप लोगों में बैठा हूं इससे

मुझे खुशी होती है। हिंदुस्तान में अभी जो हो गया वह बड़े दुःख की बात थी। एक बुरी हवा आई और उसके झोंके में अच्छे भी बुरे बन गए। खुदा करे अब ऐसी हवा आए जिसमें बुरे भी अच्छे हो जायं।

हिंदुस्तान में दुनिया के सब मजहबों की कौमें रहती हैं। हिंदुस्तान ने सब को प्रेम से स्थान दिया है। हमारे कवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने गाया है, "हिंदुस्तान इन्सान का एक समुंदर है।" समुंदर में जैसे सब तरफ की नदियां आकर मिलती हैं, वैसे ही यहां भी सब कौमें आकर मुहब्बत से रही हैं। जो कुछ हुआ उससे सबक लेकर अगर हम आगे ऐसी बातें नहीं होने देंगे तो जो हुआ उससे भी फायदा ही हुआ है ऐसा कह सकेंगे। मौलाना साहब ने अभी फरमाया कि--हिंदू, मुसलमान आदि जमातें एक दिल से यहां रहें इसके लिए गांधीजी ने आखिर तक कोशिश की। वही कोशिश आगे भी जारी रहनी चाहिए। हम सब की यही मन्शा होनी चाहिए और वैसे ही काम हमें करने चाहिए।

नौ साल पहले मुझे एक दिन सूझा कि मैं हिंदुस्तान में रहता हूं और खुद को हिंदुस्तानी कहता हूं, तो जैसे हिंदू-धर्म की किताबों का अध्ययन मैंने किया वैसे अपने पड़ोसी मुसलमान भाई जो एक हजार साल से यहां रहते हैं उनके धर्म की किताब का अध्ययन भी करूं। वैसे कुरान शरीफ का अंग्रेजी तरजुमा तो मैं देख गया था। लेकिन उतने से दिल को तसल्ली नहीं होती थी। तब अरबी में ही पढ़ने की सोची। मैं वर्धा के पास एक देहात में रहता हूं। वहां पर जो भी मदद मिल

सकी लेकर दो-तीन साल में मैंने कुरान को कई मरतबा पढ़ लिया। उसके लिए अरबी भाषा भी सीखनी पड़ी। उसका माहिर तो मैं नहीं हूं, लेकिन समझ लेता हूं। मैं मानता हूं कि हमें एक साथ रहना है तो एक दूसरों के धर्म को समझ लेना जरूरी है। इससे बहुत-सी गलतफहमियां दूर हो जाती हैं। मैंने कुरान के अभ्यास से बहुत पाया। कई बातें मुझे मालूम हुईं जिन्हें पहले मैं नहीं जानता था। इस्लाम इन्सान-इन्सान में फर्क नहीं करता, दूसरे मजहबवालों से मुहब्बत के साथ रहने को कहता है। इतना ही नहीं, इस्लाम का तो विश्वास है कि "ला नूफर् रीक़ो बैन अहदिम् मिर् रुसुलिह्" —यानी दुनिया में जितने भी रसूल हुए हैं उनमें हम फर्क नहीं करते। कुरान के विचार से परमेश्वर पर भरोसा रखना, हक पर चलना और सब्र रखना यही असली दीन है। खुदा पर भरोसा रखने के साथ-साथ नेक काम करने की बात हर जगह जोड़ दी है। मजहब तो लोगों ने अपने-अपने खयालों के अनुसार अलग-अलग बनाए हैं। लेकिन असली 'दीन' जिसे कहते हैं, एक ही है। जैसे लिबास अलग-अलग पहने जाते हैं लेकिन उनका मकसद एक ही होता है—हवा से शरीर को बचाना, वैसे ही मजहबों की बात है। यही हिंदुस्तान के सब संतों ने जाहिर किया है। सिक्खों के गुरु-ग्रंथ साहब में भी गुरुओं की वानी के साथ दूसरे संतों की बानी ली गई है; जिसमें मुसलमान संत बाबा फरीद की बानी भी है। सब संतों का हृदय एक होता है। सबने हमें सिखाया है कि 'खुदा से डरो, और किसीसे न डरो' न किसीको डराओ।

ईश्वर पर भरोसा रखनेवालों की यही निशानी है।

सरकार ने इस जगह के लिए जो कुछ किया उसके वास्ते आपने उनका शुक्र माना। आपके लिए वह शोभा देता है। लेकिन सरकार ने तो अपना फर्ज अदा किया है। यह सरकार भी आपकी है। यह हम सब लोगों का घर है ऐसा समझ कर इसमें जो बुरी बातें दिखाई दें उन्हें हम सब मिलकर साफ करें। मैं हर जगह यही कहूंगा कि हम हिम्मत रक्खें और मुहब्बत रक्खें।

अदचीना, दिल्ली
बीबी नूर के उर्स के अवसर पर
११-४-४८

: ९ :

झगड़ों का सही कारण

दो दिन से मैं यहां शरणार्थी भाइयों से बातचीत कर रहा हूं। उनमें से बहुत सारे सिंध से आए हुए हैं। वहां वे बहुत अच्छी तरह से रहते थे। वहां का सब छोड़कर वे यहां आ पहुंचे हैं। उनका यहां कुछ इंतजाम तो हुआ है, फिर भी वे दुःखी हैं। मैं मानता हूं कि उनके दुःख सही हैं। उनकी शिकायत है कि यहां के लोग उनसे पहले-जैसी सहानुभूति नहीं रखते हैं। इसलिए यहांके लोगों से मैं कहूंगा कि ऐसा नहीं होना चाहिए।

दूसरों के दुःखों का तबतक हमें पता नहीं चलता जब तक उनकी निगाह से देखना हम नहीं सीखते। इसलिए मैं यहां के भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि वे सिंधी भाइयों की दृष्टि से सोचें। सिंध में वे जैसे रहते थे उस हालत में हम भले ही यहां उनको न रख सकें लेकिन दिल की हमदर्दी तो उन्हें मिलनी ही चाहिए। संकट में मनुष्य को यदि कोई हमदर्दी दिखाता है तो चाहे बाह्य-संकट-निवृत्ति न भी हो तो भी उस के दिल को तसल्ली हो जाती है।

यह तो मैंने यहां के भाइयों से कहा। वैसे ही सिंधी भाइयों से भी मैं कुछ कहना चाहता हूं। उनको समझना चाहिए कि जितनी तादाद में वे यहां आए हैं उसे देखते हुए यहांवालों को, उनका स्वागत करना आसान नहीं है, उनके सामने भी कुछ मुसीबतें हैं। एक शरणार्थी भाई ने कहा मुसीबत क्यों होनी चाहिए ? यहां से भी जो मुसलमान गए हैं, उनके बदले हम आ गए हैं। मैंने कहा, वहां से कुछ आए और यहां से कुछ गए यह तो ठीक है, लेकिन जो गए और जो आए उन दोनों ने मिलकर यहां की समस्या आसान नहीं बल्कि और कठिन बनाई है, क्योंकि जो गए वे कारीगर और मजदूर थे और जो आए वे तिजारत पेशा हैं। यानी जिनकी यहां जरूरत थी वे यहां से गए और जिनकी जरूरत नहीं थी वे आ गए। इस तरह मुश्किल दुगुनी बढ़ गई। इसका एक ही इलाज हो सकता है। जो भाई यहां आए हैं वे अगर कारीगर बनने की तैयारी और हिम्मत रखते हैं तो उनका पूरा स्वागत हो सकेगा। मेहमान जब दो दिन के लिए आता है तो उसका

उत्तम स्वागत होता है, लेकिन जब वह घरवाला बन जाता है तो घर के कामों में उसे मदद देनी चाहिए, नहीं तो घर की मुसीबत बढ़ती है और स्वागत कम होता है । मैं जानता हूं कि शरणार्थी भाइयों में कई ऐसे हैं जिन्होंने व्यापार के सिवा आजतक और कुछ नहीं किया और उनकी उम्र भी अधिक है । ऐसे लोगों को कुछ व्यापार मिल ही जाना चाहिए और अगर एक ही शहर में सब एक साथ रहने का आग्रह न रखें और अनेक शहरों में विभाजित हो जायं तो मिल भी जायगा। लेकिन जो नौजवान हैं उन्हें तो कारीगरी के लिए और शरीर परिश्रम के लिए तैयार होना ही चाहिए ।

यह मैं केवल सिंधी नौजवानों को ही नहीं कहता। सारे हिंदुस्तान की यह समस्या है। यहां अगर परिश्रम-निष्ठा और उत्पादन नहीं बढ़ेगा, और ज्यादातर शिक्षित लोग व्यापार और नौकरी ही करना चाहेंगे, तो हिंदुस्तान में लड़ाई-झगड़े मिटनेवाले नहीं हैं। बल्कि मैं तो स्पष्ट देख रहा हूं कि वे बहुत बढ़नेवाले हैं। वे कभी हिंदू-मुस्लिम झगड़े का रूप पकड़ेंगे तो कभी सिंधी-मारवाड़ी झगड़े का और कभी और कोई रूप उनका होगा । लेकिन वह रूप बाहरी होगा । झगड़े का असली कारण तो यही है कि गरीब चूसे जा रहे हैं, उत्पादन का भार उन पर पड़ रहा है। खाना भी उनको पूरा नहीं मिलता है, जब कि दूसरे लोग खाना पूरा खा रहे हैं । इतना ही नहीं बल्कि उत्पादन में हिस्सा न लेते हुए आराम की जिंदगी चाहते हैं, संचय भी करना चाहते हैं । इतने बड़े देश में जहां आज ३० करोड़ की आबादी है, जहां की आबादी और भी

बढ़ रही है, जहां मुश्किल से मनुष्य के पीछे एक एकड़ खेती है वहां अगर परिश्रम-निष्ठा और उद्योग नहीं बढ़ता है तो सुख कभी मिलनेवाला नहीं है। स्वर्ग में सुख मिलता है, पालकी में बैठने को मिलता है, ऐसा लोग कहते हैं। मैं कहता हूं ऐसा स्वर्ग मुझे नहीं चाहिए जहां पालकी दूसरों के कंधों पर उठाई जाती है; वह स्वर्ग मेरे लिए निकम्मा है। मैं तो ऐसा स्वर्ग चाहता हूं जहां हर एक मनुष्य अपने पांव से चलता है, अपने हाथ से काम करता है, जहां कोई किसीके कंधों पर नहीं बैठा है, कोई किसीको लूटता नहीं है। वेद भगवान ने कहा है "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा:"—कर्म करते-करते सौ साल जीने की इच्छा रखो। कर्म करनेवाला ही जीने का अधिकारी है। जो कर्म-निष्ठा छोड़कर भोगवृत्ति रखता है वह मृत्यु का अधिकारी बनता है। कुछ लोगों की आयु अधिक कष्टों के कारण क्षीण हो रही है, और कुछ की अधिक आराम में रहने के कारण बदहज्मी से। समाज की यह व्यवस्था उचित नहीं है। भगवान ने हमें हाथ दिये हैं, बुद्धि दी है, इन दोनों का ही उपयोग करके जब हर कोई उत्पादन में हिस्सा लेगा तभी देश सुखी होगा; वरना आगे इतनी बड़ी समस्या खड़ी होनेवाली है कि जिसके सामने आज की शरणार्थियों की समस्या—जो कि कम नहीं है—बहुत ही छोटी मालूम होगी। भगवान से मैं प्रार्थना करता हूं कि वह हमें सूझ दे और बचाए।

अजमेर
११-४-४८

: १० :

सीखो और सिखाओ

मैं यहां आ गया इस बात की मुझे खुशी है। डाक्टर जाकिर हुसेन साहब से १९३७ में, जब हम सब मिल कर नई तालीम के बारे में सोच रहे थे, पहली मरतबा मेरा परिचय हुआ। संस्कृत में कहावत है कि "सज्जनों के साथ सात कदम चलने से भी उनसे जिंदगी भर के लिए दोस्ती बन जाती है।" इसीसे हिंदुओं की शादी में लड़के और लड़की को सात कदम साथ चलाने की एक विधि बन गई है—जिसे सप्तपदी कहते हैं। पहले परिचय में ही डाक्टर साहब की भलाई और दिमाग की सफाई ने मुझे अपनी ओर खींच लिया। तबसे मेरे दिल में रहा है कि मैं जामिया में हो आऊं। आज जैसे आया हूं उस तरह नहीं, बल्कि चंद रोज रहने के लिए। बीच में जब मैं कुरान का अभ्यास करता था, तब यहांकी विशेष याद आई। क्योंकि अगर मैं यहां आकर रहता तो, यहां पवनार में रहते जो काम महीनों में नहीं हो सकता था, चंद दिनों में हो जाता। लेकिन मैं अपना स्थान नहीं छोड़ सकता था। इसलिए वहींके प्रायमरी स्कूल के एक टीचर की मदद ले कर कुरान पढ़ना सीखा। उसने पढ़ना तो सिखा दिया, लेकिन अरबी के मानी वह नहीं जानता था। उसके लिए फिर मैंने किताबों से मदद ली।

आपके यहां रहने का मौका यद्यपि नहीं मिला, फिर भी

दिल तो आपके साथ रहा है। क्योंकि नई तालीम के काम को मैं अपना काम मानता हूं। बचपन से आजतक मैं तालिब-इल्म रहा हूं। जेल में करीब पांच सालतक रहना हुआ। वहां और तो बहुत बातें होती थीं, लेकिन दिन का काफी समय मैं हिंदुस्तान की अलग-अलग भाषाएं सीखने में देता था। जब कभी विद्यार्थियों के साथ बैठने और बोलने का मौका आता है तब लगता है कि मैं भी उनके जैसा छोटी उम्रवाला होता तो कितना अच्छा होता! लेकिन वह तो होनेवाली बात नहीं है। जैसे-जैसे दिन जाते हैं, आयु बढ़ती ही जाती है। वह छोटी होती जाय ऐसी कोई तरकीब नहीं निकली है।

विद्यार्थियों को मैं हमेशा कहता हूं कि आप सीखने के साथ-साथ सिखाते भी जाइए। जब मैं हाईस्कूल में था तब अपने साथियों को गणित सिखाता था। वे अपने सवाल मेरे सामने रखते थे और मैं उनकी मदद करता था। मेरा यह रोज का धंधा ही बन गया था। आजकल दूसरे कामों में पड़ा रहता हूं, फिर भी थोड़ा समय सिखाने के लिए निकाल ही लेता हूं। उससे दिल को तसल्ली होती है। जिस दिन सिखाने का मौका नहीं मिलता उस दिन फाका-सा हुआ लगता है। मैं तो कहता हूं कि सिखाना यही सीखने का उत्तम तरीका है। 'इल्म देने से दूना होता है' यह तो मशहूर कहावत है। पैसे के बारे में लोगों में उलटी धारणा है। लेकिन वह गलत है। पैसा भी देने से बढ़ता है। अपने पास रखने से वह घटता है। कुरान में एक जगह कहा है, 'सूद से नहीं, दान से पैसा बढ़ता है'। अपने पास आया हुआ पैसा फौरन दूसरे के पास

भेज देना चाहिए। फुटबाल के खेल में अपनी तरफ आया हुआ बाल हम अपने ही पास रक्खेंगे तो खेल कैसे चलेगा ? हम दूसरे के पास फेंकें, वह तीसरे के पास फेंके, इस तरह फेंकते जाने से ही फुटबाल का खेल अच्छा चलता है। पैसा और इल्म दूसरों को देते चलो। उससे दोनों चीजें बढ़ेंगी।

हिंदुस्तान में करोड़ों लोग पढ़ना नहीं जानते। उन्हें सिखाने की बात करते हैं तो पचासों साल की लंबी स्कीमें और अरबों रुपयों का खर्च बतलाते हैं। मैं पूछता हूं 'ऐसा क्यों ? जिसको जो आता है वह दूसरे को क्यों नहीं पढ़ाता ?' इस तरह करते जायंगे तो थोड़े ही दिनों में देश भर का अज्ञान चला जायगा। सिखानेवाला ऐसा न समझे कि मैं सिखा रहा हूं, वह यही समझे कि मैं सीख रहा हूं। मैं अपने तजुर्बे से कहता हूं कि विद्यार्थियों को जितना मैंने सिखाया है उससे बहुत ज्यादा उनसे सीखा है। मेरी निगाह में वे मेरे उस्ताद होते हैं और उनकी निगाह में मैं उनका उस्ताद होता हूं। इस तरह हम दोनों एक दूसरे के उस्ताद बनते हैं, दोनों अपने गुणों को बढ़ाते हैं।

जामिया के विद्यार्थी यह खूबी सीख लेंगे तो वे देश की उत्तम सेवा करेंगे, जिससे हिंदुस्तान की कायापलट हो जायगी।

जामिया मिलिया, दिल्ली

१२-४-४८

: ११ :

व्यक्तिगत और सामूहिक प्रार्थना

अध्यापक, विद्यार्थी आदि सब मिलकर संध्या समय प्रार्थना करें, यह रिवाज हमारी संस्थाओं में पड़ गया है। एक रिवाज के तौर पर भी यह अच्छी चीज है। लेकिन जब वह केवल रिवाज रह जाता है तब यंत्रतुल्य हो जाता है। वैसा नहीं होने देना चाहिए। उपनिषदों में आया है कि जैसे पक्षी दिन में चारों तरफ इधर-उधर उड़ता फिरता है, लेकिन शाम के समय अपने घोंसले में आकर स्थिर हो जाता है, वैसे जीवात्मा जब संसार के सब तरह के कामों में भटककर थक जाता है तब विश्राम के लिए परमेश्वर के पास पहुंच जाता है। प्रार्थना यानी ईश्वर के पास पहुंचने की इच्छा। हम भगवान की शरण में आए हैं यह भाव प्रार्थना में होना चाहिए। दिन भर जो काम करते हैं वे सब शाम की प्रार्थना में परमेश्वर को अर्पण करते हैं, ऐसी भावना रही तो उसका असर हमारे दिन भर के कामों पर पड़ेगा। और तभी प्रार्थना की असली शक्ति प्रगट होगी। प्रार्थना तो हृदय से ही करनी होती है। फिर भी चूंकि मनुष्य को ईश्वर ने जबान दी है, इसलिए वह उसका भी उपयोग कर लेता है। लेकिन बिना जबान के भी हृदय से सर्वोत्तम प्रार्थना हो सकती है। हमारी जबान भी टूटी-फूटी होती है, इसलिए हम संतों की वाणी का उपयोग करते हैं। लेकिन वह बननी चाहिए हमारे हृदय की वाणी।

निष्काम भाव से दक्षतापूर्वक आलस्य छोड़कर सेवा करने का दिनभर प्रयत्न करते रहें, और शाम को इस तरह की हुई शुद्ध सेवा भगवान को समर्पित कर दें। दिनभर के कामों में कुछ दोष भी दीख पड़ें तो उन्हें भी धोने के लिए भगवान को ही अर्पण करना है। यह समर्पण की विधि बहुत ही उपयोगी है। चित्त-शुद्धि के अन्य साधनों को अगर मैं सोडा या साबुन की उपमा दूं तो इसको जल की उपमा दूंगा। सोडा-साबुन बिना जल के काम नहीं देते। लेकिन बिना सोडा-साबुन के भी शुद्ध जल से धोने का काम हो जाता है। हम भगवान की शरण में जाते हैं तो हृदय शुद्ध होता है, थकान मिट जाती है, और नई शक्ति, नई स्फूर्ति, नया संकल्प मिल जाता है।

यह एक आत्मिक क्रिया है, जिसे मनुष्य को एकांत में आत्मपरीक्षणपूर्वक करते रहना चाहिए। इस तरह की उपासना करनेवालों को एकांती भक्त कहा गया है। हम सब को एकांती भक्त बनना चाहिए। एकांती भक्त एकत्रित होकर जब भगवान का गुणगान करते हैं तब वह सामुदायिक प्रार्थना बनती है। जो एकांत उपासना नहीं करते उनके एकत्रित होने से सामुदायिक प्रार्थना नहीं बनती। एकांती उपासक जब एकत्र हो जाते हैं तब सबकी एक सामुदायिक इच्छाशक्ति बनती है जिसका हर एक को लाभ मिलता है। व्यक्तिगत या एकांत उपासना में हम ईश्वर से सीधा संबंध जोड़ने की कोशिश करते हैं और सामुदायिक प्रार्थना में संतों के द्वारा ईश्वर से संबंध जोड़ते हैं। दोनों की मनुष्य को जरूरत है।

भगवान को समर्पण करना है, इस खयाल से हमारी सारी क्रियाएं अपने आप अच्छी होने लगेंगी। एक अतिथि घर पर आता है तो हम कितनी स्वच्छना से, दक्षता से स्वाद भोजन बनाकर उसे अर्पण करते हैं। तो जहां स्वयं भगवान को समर्पण करने का खयाल रहेगा, वहां कितनी पवित्रता हमारी क्रिया में आयगी ? भगवान के अनुसंधान से सारे भेद मिट जाते हैं, अपनापन जाता रहता है। सारे बिंदु समुद्र में मिल जाते हैं। हम सब शांति-समुद्र में डूब जाते हैं और जीवन शोभा को प्राप्त होता है। इसलिए रिवाज के तौरपर भी सामुदायिक प्रार्थना को रखकर हमें उसमें ईश्वरार्पण भावना का प्राण डालने की चेष्टा करनी चाहिए। वैसा करेंगे तो, जैसा मनु ने कहा है, हम दूसरे कोई उपाय करें या न करें हमें सिद्धि मिलेगी।

विक्रम (विहार)
१७–४–४८

: १२ :

राष्ट्र-भाषा

अपने काम में से समय निकाल कर मैं यहां आया। क्योंकि दक्षिणवालों के साथ मेरी प्रीति हो गई है। मैं जब वेलूर जेल में था तब दक्षिण की चारों भाषाएं सीखने की

मैंने कोशिश की। मैं मानता हूं कि हिंदुस्तान की एकता के लिए दक्षिणवालों को जैसे हिंदी सीखनी चाहिए, वैसे ही उत्तर-वालों को भी दक्षिण की कोई भाषा सीखने की कोशिश करनी चाहिए। वह मौका मुझे वहां मिला। मैंने देखा कि दक्षिण की चारों भाषाएं बहुत सुंदर और समर्थ हैं। हिंदी, बंगाली, या किसी दूसरी भाषा से वे पिछड़ी हुई नहीं; बल्कि कुछ बातों में उनसे अधिक शक्तिशाली हैं। उनका अपना धातु-सामर्थ्य भी अपार है। उसके अलावा संस्कृत शब्दों में 'इंचु', 'इसु' आदि प्रत्यय लगा कर असंख्य धातु वे बना लेती हैं, जिसके कारण वे समर्थ बनी हैं, और मधुर भी लगती हैं। 'तमिल्' का अर्थ ही 'अमृत' है। 'तेलुगु' का मतलब है 'शहद-जैसी मीठी भाषा'। और दरअसल वह वैसी मीठी है भी। ऐसी ही कन्नड़ और मलयालम भी हैं।

यहां मुझे मालूम हुआ कि स्त्रियां ही हिंदी सीखने में विशेष दिलचस्पी ले रही हैं। मद्रास में भी मैंने यही देखा था। और वह ठीक भी है। संस्कृति की रक्षा का काम स्त्रियां जितना कर सकती हैं उतना पुरुष नहीं कर सकते। इसलिए यह देख कर कि स्त्रियां इस बात में आगे हैं, मुझे खुशी होती है।

वेलूर जेल में दक्षिण की चारों भाषाएं बोलनेवाले डिटेन्यू (नज़रबंद) पड़े थे। लेकिन वे एक-दूसरे की भाषा नहीं जानते थे, और न जानने की परवा ही करते थे। आपस का सब व्यवहार वे अंग्रेजी में चलाते थे। दक्षिण की भाषाएं एक दूसरी से इतनी नजदीक हैं कि तमिल् जाननेवाला अगर

मलयालम सीखना चाहे तो आठ दिन में सीख सकता है। तमिल् और कन्नड में भी बहुत फर्क नहीं है। तेलुगु और तमिल् में कुछ फर्क है, लेकिन फिर भी तमिल्वाला एक महीने के अभ्यास से तेलुगु सीख सकता है। लेकिन वे ऐसा कोई प्रयत्न नहीं करते थे। मैंने उस समय महसूस किया कि एक राष्ट्र-भाषा की कितनी जरूरत है।

प्राचीन काल से "आ सिंधोः आ परावतः", यानी समुद्र-तट से लेकर हिमालय की गुफा तक हमने भरत-खंड एक माना है। उस वक्त भी प्रांतों में कई जबानें चलती थीं, और एक राष्ट्र-भाषा की जरूरत पड़ी थी। वह काम संस्कृत ने किया। संस्कृत का अर्थ है, संस्कार—प्रचार की भाषा, और प्राकृत यानी प्रकृति की भाषा, जो आप लोगों में बोली जाती है। राष्ट्र-भाषा के ख्याल से ही शंकराचार्य ने अपने ग्रंथ संस्कृत में लिखे। अगर मलयालम में लिखते तो आसपास के लोगों की शायद वह अधिक सेवा कर लेते। लेकिन उनको हिंदुस्तान भर में विचार-क्रांति करनी थी, सारे हिंदुस्तान में प्रचार करना था, इसलिए उन्होंने सुबोध पद्धति से संस्कृत में ही लिखा।

आज राष्ट्र-भाषा के तौर पर संस्कृत नहीं चलेगी। यद्यपि काटजू साहब कहते हैं कि संस्कृत भाषा राष्ट्र-भाषा बनने की योग्यता रखती है। उनकी दृष्टि भी मैं समझ सकता हूं। लेकिन आज आम जनता का संस्कृत से काम नहीं चलेगा। फिर दूसरी कौन-सी भाषा राष्ट्र-भाषा हो सकती है? आखिर यही तय पाया कि हिंदुस्तानी ही राष्ट्र-भाषा हो सकती है। क्योंकि १५-२० करोड़ लोग उस भाषा को

जानते हैं। बंगाली लोग, अगर पूछें कि बंगला क्यों राष्ट्र-भाषा न हो ? क्या उसमें साहित्य की कमी है ? मैं कहूंगा बंगला में तो हिंदुस्तानी से बढ़ कर साहित्य है। फिर भी वह राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती। उसका एक ही कारण है कि वह भाषा अधिक लोग नहीं जानते। हिंदुस्तानी को गांधी जी ने राष्ट्र-भाषा बनाया हो ऐसी बात नहीं है। जो फकीर और साधु हिंदुस्तानभर में घूमते थे वे हिंदुस्तानी ही बोलते थे। इस तरह वह सहज ही राष्ट्र-भाषा हो चुकी है। उसी को हमने मान्यता दी है।

लेकिन अब हिंदी और हिंदुस्तानी के नाम पर झगड़े पैदा हो गए हैं। मेरी निगाह में ये झगड़े निकम्मे हैं। जो बात हमने एकता के लिए निकाली उसमें भी अगर हम झगड़ा खड़ा कर देते हैं तो एकता की जड़ को ही काटते हैं। जो हिंदी का नाम लेते हैं, वे भी मेरा ही काम करते हैं, बशर्ते कि वे हिंदी को आसान बना दें। यही बात उर्दू के लिए भी कहूंगा। आप देखेंगे कि आसान हिंदी और आसान उर्दू में बहुत फर्क नहीं है, और वही हिंदुस्तानी है। आखिर शब्दों के बारे में इतना झगड़ा क्यों होना चाहिए ? मैं अगर पंजाब में जाकर बोलने लगूं तो उर्दू शब्दों का अधिक उपयोग करूंगा, और अगर दक्षिण की तरफ जाऊं तो संस्कृत शब्दों का अधिक उपयोग करूंगा। वहां अगर मैं 'काफी' शब्द का उपयोग करूं तो शायद वे 'चाय-काफी' समझ बैठेंगे। अगर 'बस' शब्द को उपयोग करूं तो 'मोटर-बस' समझेंगे। इसलिए मैं वहां 'पर्याप्त' से काम लूंगा। जब तक भाषा का व्याकरण

एक है, वाक्य-रचना एक है, क्रियापद वे ही हैं, तब वह एक ही भाषा कही जाती है; शैली में भले ही फर्क हो।

इसलिए मैं कहता हूं ये झगड़े छोड़ दो। दक्षिणवालों के लिए मैं लिपि का भी आग्रह नहीं रखूंगा। उनको मैं कहूंगा, तुम तो अपनी लिपि में ही हिंदी सीखो। भाषा आ जाने के बाद लिपियां जितनी सीखनी हैं, सीख लो। उसमें कोई कठिनाई नहीं रहेगी।

इस तरह मेरा न हिंदीवालों से झगड़ा है, न उर्दूवालों से। मैं तो दोनों को अपना सहकारी मानता हूं। मैं उनको कहूंगा कि मेरे पास संस्कृत, अरबी, फारसी आदि सौ शब्द हैं, आपके पास पचास हैं। मेरे सौ में आपके पचास तो आ ही जाते हैं। समुद्र नदियों से क्यों झगड़ा करेगा? समुद्र में जिस तरह सारी नदियों का समावेश हो जाता है, वैसे मेरे शब्द-भंडार में सभी शब्दों का समावेश हो जाता है। किस शब्द का कहां उपयोग करना यह अकल मैं रखता हूं।

आप बहनें उस झगड़े से अलग रहिए। गांधी जी ने कहा था कि अहिंसा का प्रचार स्त्रियां विशेष कर सकती हैं। पुरुषों ने बहुत सारे फसाद दुनिया में खड़े किए हैं, उनको मिटाना आपका काम है। इस क्षेत्र में भी आप आगे आएंगी तो हिंदुस्तान में संस्कृति का प्रचार आपके द्वारा अच्छी तरह से होगा।

नई दिल्ली
२०-४-४८

: १३ :

१

जैनों का मुख्य विचार

आज हम महावीर स्वामी का दिन मना रहे हैं। ढाई हज़ार साल पहले उन्होंने इस भूमि पर अवतार लिया था। उन्होंने जो विचार दिया वह नया नहीं था। महावीर स्वामी तो जैनों के आख़िर के, यानी २४वें, तीर्थंकर माने जाते हैं। उनके हजारों साल पहले जैन-विचार का जन्म हुआ है। ऋग्वेद में भगवान की प्रार्थना में एक जगह कहा है "अर्हन् इदं दयसे विश्वं अभवम्"—हे अर्हन्! तुम इस तुच्छ दुनिया पर दया करते हो। इसमें 'अर्हन्' और 'दया' दोनों जैनों के प्यारे शब्द हैं। मेरी तो मान्यता है कि जितना हिंदू-धर्म प्राचीन है, शायद उतना ही जैन-धर्म भी प्राचीन है। लेकिन किसी धर्म का प्राचीन होना ही बड़ी बात नहीं है। अगर कोई धर्म अर्वाचीन भी है, लेकिन उसमें सही बात है, तो उसकी कीमत है। और कोई धर्म अति प्राचीन है, लेकिन सही बात उसमें नहीं है, तो उसकी कोई कीमत नहीं है। दरअसल कीमत सही विचार की है, और सही विचार जैनों ने बहुत दिया है।

जैनों का मुख्य विचार, प्राणियों पर दया-भाव रखना मशहूर है। उनका एक दूसरा भी विचार है जो पहले के

जितना प्रसिद्ध तो नहीं है, लेकिन उतने ही महत्त्व का है। वह है हर बात में मध्यस्थ-वृत्ति रखना, यानी किसी बात का आग्रह न रखना। आग्रह से हम एकांगी वन जाते हैं। जैन-धर्म सर्वांगी दृष्टि रखने को कहता है। उसे वे सम्यक्त्व कहते हैं। यह जैन-विचार की विशेषता है। हिंदू-धर्म में जन्म लेकर, आग्रह रक्खे बिना अपने विचार का प्रचार करने का ही यह नतीजा है कि आज जैनी लोग तादाद में कम हैं। लोग पूछते हैं, "जैनों की तादाद इतनी कम क्यों है?" मैं कहता हूं कि अगर उनकी तादाद ज्यादा होती तो मैं उनको अपने काम में नाकामयाब गिनता। उनकी तादाद कम है इसीमें उनकी कामयाबी है। जैनों को हिंदू-धर्म से अलग कोई दूसरा धर्म स्थापन नहीं करना था। उन्हें तो हिंदू-धर्म में ही सुधार करना था। हिंदू-धर्म में शुद्धि करके उनको मिट जाना था। अगर हिंदुस्तान के तीस करोड़ लोगों में दया का भाव और मध्यस्थ-दृष्टि आ गई तो जैनों ने जीत लिया। 'जैन' शब्द का अर्थ ही 'जीतना' है। जो अपने को जीतता है, जिसने आत्मजय प्राप्त की है, वही सच्चा जीतने-वाला है। वीर पुरुष वह कहलाता है जो दुनिया को जीतता है। लेकिन महावीर वह है जिसने अपने ऊपर जय पाई, और दुनिया के हृदय में ऐसे छिप गया, जैसे दूध में शकर।

भारत के मध्ययुगीन इतिहास में हम देखते हैं कि शिक्षा देनेवाले गुरु जैन थे, और शिक्षा पानेवाले उनके विद्यार्थी हिंदू थे। बचपन में हमारी पढ़ाई शुरू हुई तब की मुझे याद है कि 'अ', 'आ'; 'क', 'ख' आदि वर्ण पढ़ाने के पहले विद्या-

र्थियों को "श्रीगणेशाय नमः, ओं नमः सिद्धम्" यह सिखाते थे। मैं महाराष्ट्र की बात करता हूं। यहां कैसे सिखाया जाता है, मुझे मालूम नहीं। उसमें "श्रीगणेशाय नमः" शिष्यों के धर्म को लक्ष्य करके रक्खा है, क्योंकि हिंदू-धर्म में पहला नमन गणेश जी को किया जाता है। "ओं नमः सिद्धं" यह जैन-धर्म को लक्ष्य करके रक्खा है। वह जैन गुरुओं का सिक्का है। लेकिन जैन गुरु इतने नम्र थे कि "ओं नमः सिद्धं" को उन्होंने 'श्रीगणेशाय' के बाद रक्खा। जैनों ने अपने लिए स्वतंत्र अधिकार भी नहीं मांगे। वे अपने को सिर्फ सुधारक मानते थे, यही उनकी विशेषता थी। उन्होंने सुधार का बहुत कार्य किया। अब उसे ही आगे चलना चाहिए। उसके लिए अब उन्हें (जैनों को) गुरु बनने की जरूरत नहीं है। उन्हें तो सेवक बनना चाहिए। वे सेवक बनेंगे तो उनके विचारों का सहज प्रचार होगा।

जैनों ने भी अहिंसा का नाम लिया और गांधी जी ने भी। लेकिन हमने देखा कि गांधी जी की अहिंसा से जो शक्ति पैदा हुई वह जैनों की सांप्रदायिक अहिंसा से नहीं हुई, क्योंकि उन्होंने उसका अर्थ संकुचित कर लिया। अहिंसा का यहां-तक संकुचित अर्थ किया गया कि अहिंसा के खयाल से खेती करना भी गौण मान लिया गया। क्योंकि खेती में कीड़ों की हिंसा होती है। अहिंसक को व्यापार की मनाही नहीं है। खेती में पैदा हुए माल का व्यापार होता है। आचार्यों ने "कृत, कारित और अनुमोदित" तीन प्रकार की हिंसा बताई है। कृषि में अगर हिंसा है तो कृषि में पैदा हुए अनाज

का व्यापार करना उस हिंसा का अनुमोदन ही हुआ। कई जैन ऐसे हैं, जो चींटियों को शकर खिलाते हैं। हमारे वर्धा में एक दयालु पुरुष हैं; मैंने देखा है, कि वह गांव से बाहर दूर तक घूमने को जाते हैं और इधर-उधर शकर डालते हैं। एक दिन वह शकर डाल कर गए; काफी चींटियां जमा हो गईं, थोड़ी ही देर बाद मैंने देखा, एक बैल आया, जिसका पांव पड़ने से सैकड़ों चींटियां खतम हो गईं। अगर वह भला आदमी शकर न डालता तो यह सब हिंसा न होती। जीव-जंतुओं को पालना हम अहिंसा समझते हैं, लेकिन वह गलत विचार है। जिसने पालन करने की जिम्मेदारी उठाई, उसको संहार करने और जन्म देने की भी जिम्मेवारी उठानी चाहिए। मनुष्य इतनी भारी जिम्मेवारी नहीं उठा सकता। वह तो ईश्वर का ही काम है। इस तरह की दया करने जाते हैं तो हिंसा ही अधिक होती है।

इसलिए गांधीजी ने सिखाया कि अहिंसा की शक्ति हम मानव-मानव के बीच का वैरभाव मिटाने में लगा दें। मत्सर, क्रोध आदि को चित्त में से निकालकर चित्त-वृत्ति शुद्ध करें। मनुष्य मनुष्य के साथ ही मत्सर करता है, बैल के साथ तो कोई मत्सर नहीं करता। मानवों के व्यवहार में ही हमारी अहिंसा की कसौटी होती है।

अहिंसा के साथ सत्य जुड़ा हुआ रहता है। अहिंसा के समान ही सत्य की महिमा जैन आगमों ने गाई है। लेकिन कितने ही जैन ऐसे हैं, जो व्यापार में बेखटके असत्य का उप-योग करते हैं और मानते हैं कि हम खेती नहीं करते, व्यापार

करते हैं, इसलिए हिंसा से बचे हुए हैं। हिंसा से बचने का यह तरीका नहीं है। अगर सत्य नहीं रहा तो अहिंसा की भी रक्षा नहीं हो सकती।

इसलिए मैं आपसे अर्ज करूंगा कि महावीर जयंती के इस शुभ अवसर पर सत्य का व्रत लीजिए, और दुःखी मानवों की सेवा का निश्चय कीजिए। अपने चारों ओर नजर डालिए। कितने ही आपके भाई दुःख में पड़े हुए हैं, जैसे आजकल ये शरणार्थी हैं। सरकार उनके दुःख दूर करने की कोशिश कर रही है; उससे हमारा धर्म पूरा नहीं हो जाता। हमें अपने दिल में भी दयाभाव रखना चाहिए, और उनके लिए कुछ-न-कुछ करना चाहिए। अगर जैन लोग ऐसा करेंगे तो अपने धर्म की वे बहुत सेवा करेंगे।

गांधी-आश्रम खादी भंडार, दिल्ली
२१-४-४८

२

मांस-भक्षण

मैंने समझा था कि अभी मैंने जितना कहा काफी है। लेकिन मांस-भक्षण के विषय में भी मैं कहूं ऐसी इच्छा कुछ भाइयों ने प्रगट की है।

बात ऐसी है कि जैन लोग जब दया-भाव की बात सोचते हैं तो प्रथम मांसाशन से छूटने का विचार ही उनके सामने

आता है। मांसाशन का त्याग करना चाहिए, इस बारे में विवेकी पुरुषों में दो मत हो ही नहीं सकते। लेकिन उसका सार्वत्रिक अमल कैसे होगा यह सोचने की बात है।

प्राचीन काल में सारी प्रजा मांसाहार करती थी और ऋषि-मुनि भी मांसाहार करते थे। विचार करने पर ऋषियों को सूझा कि पशु-हत्या करके हम जीएं यह मानवता के लिए शोभा देनेवाली बात नहीं है। इसलिए उससे छूटने के लिए वे शोध करने लगे। तब खेती की शोध हुई और खेती से अनाज पैदा करके मनुष्य मांसाशन कम कर सकता है, यह बात उनके ध्यान में आई। तबसे इस क्षेत्र में अहिंसा का आरंभ हुआ। साथ ही गाय के दूध का उपयोग सूझा, जिससे मांसाशन से मुक्त होने की युक्ति हाथ में आ गई। वेद में गाय के विषय में आया है, "गोभिः तरेम अमतिं दुरेवाम्"। हमें गो-सेवा मिली तब मांसाशन-रूप दुर्बुद्धि से मुक्त होने का रास्ता दिखाई दिया। क्योंकि गाय से बैल मिल जाते हैं, जिनसे हम खेती का काम लेते हैं; और दूध मिलता है, तो मांसाहार से छूट जाते हैं। सामुदायिक मांसाहार-निवृत्ति का सबसे पहला श्रेय शायद जैनों को ही है। बाद में वैष्णव, ब्राह्मण आदि ने उसको स्वीकार किया। आज तीन करोड़ के लगभग लोग ऐसे होंगे, जो मांसाशन बिलकुल नहीं करते। और दूसरे जो मांसाहार करते हैं, वे भी उसको अच्छा समझ कर नहीं करते हैं। यह जैनों के विचार की विजय है।

अगर सारी प्रजा मांस-निवृत्त हो, ऐसा हम चाहते हैं, तो केवल मांस-त्याग का विचार उसके सामने रखने से यह

बात होनेवाली नहीं है। उसके लिए देश में दूध, फल, तरकारी, काफी तादाद में पैदा करनी होगी। गरीबों को ये चीजें पूरी मात्रा में मिल सकेंगी तभी मांसाहार छूटेगा। पवनार के आश्रम के सामने ही नदी है। वहां रोज मच्छीमार आते हैं। दिनभर मेहनत करके कुछ मछलियां जमा करते हैं, और उन्हें बेचकर जैसे-तैसे अपना गुजारा करते हैं। मेरी नजर के सामने ही यह चलता है, लेकिन मैं उनको रोकता नहीं। क्योंकि मैं जानता हूं कि मांस के बदले गरीबों को हम कोई दूसरी चीज देंगे तभी उनको मांसाहार से छुड़ा सकते हैं। आज तो अनाज का भी अकाल है। मछलियों आदि का उपयोग करके लोग अकाल से किसी तरह अपना बचाव कर लेते हैं। इससे हम छूटना चाहते हैं तो जैसे कि उपनिषदों ने आज्ञा दी है, अन्न अधिक मात्रा में पैदा करने का व्रत लेना होगा। "अन्नं वहु कुर्वीत तद् व्रतं"। बंगाल में गरीबों को चावल के सिवा और कोई चीज नहीं मिलती। उसके साथ मछली खाकर वे कुछ पोषण पा लेते हैं। उनको अगर हम मछली छोड़ने के लिए कहेंगे तो उसके बदले में कौन-सी चीज दे सकेंगे ?

हम में से जो लोग आज मांसाहार नहीं करते उनको अहंकार करने का कोई कारण नहीं है। मांसाशन तो हमारे पूर्वजों ने छोड़ दिया था। उनको, उसके छोड़ने में त्याग करना पड़ा था, तपस्या करनी पड़ी थी। हमको तो वह चीज विरासत में मिली है। हम मांस खा ही नहीं सकते, हमें उससे घृणा होती है। इसलिए हम मांसाहार नहीं करते,

इसका श्रेय हमारे पूर्वजों को है। हम मांस नहीं खाते लेकिन उसके बदले में ऐसी चीजें खाते हैं, जो गरीबों को नहीं मिल सकतीं। और बीमार पड़ने पर डाक्टर जब इंजेक्शन देता है, तब उसमें वह क्या चीज दे रहा है इसके बारे में हम सोचते ही नहीं हैं। मांस मुंह से खाएंगे तो उसका कुछ हिस्सा हजम होगा और कुछ बाहर जायगा। लेकिन इंजेक्शन के जरिए मांस-जन्य वस्तु खाते हैं तो वह चीज पूरी-की-पूरी खून में चली जाती है। मांस खाने का वह एक विशेष रूप है। उसको कबूल करते हैं और सिर्फ मुंह से मांस नहीं खाते, तो कोई बड़ी बात नहीं है। इसलिए मैं तो कहूंगा कि सब समुदाय से मांस छुड़ाने की बड़ी बात करने के पहले हम मानव-मानव में जो झगड़े हैं, स्वार्थ-बुद्धि है, झूठ है, उससे मुक्त होने की कोशिश करें। साथ-साथ दूध, फल, तरकारी आदि परिपूर्ण मात्रा में पैदा करें। इसके बाद समाज को मांसाशन से मुक्त करने की कोशिश की जा सकती है।

और एक बात। ऊंच-नीच के भाव को हम अपने दिल से निकाल दें। जो मांस खाता है वह नीच है, और जो नहीं खाता वह ऊंच है, ऐसी भावना रखने में हम अवनति की ओर जाते हैं। मैं तो उस मनुष्य को अधिक पसंद करूंगा जो आदत से, या लाचारी से, गोश्त खाता है, लेकिन नम्र रहता है, दया-भाव रखने की कोशिश करता है; और मांसाशन से मुक्त नहीं है इसलिए अपनेको दोषी मानता है; बनिस्बत उसके, कि जो मांस तो नहीं खाता लेकिन असत्य बोलता है, ऐश-आराम में रहता है, खुद को ऊंचा समझता है, दूसरे के हाथ

का अन्न, या पानी लेना हीन समझता है। इसमें अहंकार है। जहां अहंकार है वहां आध्यात्मिक विकास की बात ही कहां रहती है ?

अभी, मेरे पास, और भी एक चिट्ठी आई है; जिसमें पूछा है कि कंद, मूल, बीज आदि खाना चाहिए या नहीं। फल का बीज खाने से फल निर्वंश होता है इसलिए फल का रस खाना चाहिए, बीज को बचाना चाहिए आदि सूक्ष्म बातों की चर्चा शास्त्रों में होती है। शास्त्रों का काम ही हर बात का बारीक-से-बारीक विश्लेषण करना है। लेकिन हमको अपनी हैसियत जाननी चाहिए। इन बातों को, एक दृष्टि से मैं बहुत गौण मानता हूं। जीवन की मुख्य बातों को छोड़ कर हम यदि इन्हींमें फंसते हैं तो जीवन की असलियत को खो बैठते हैं। दूसरी दृष्टि से ये बातें बहुत आगे की हैं। कालेज में पढ़ने के योग्य हैं। अभी तो हम प्रायमरी क्लास में भी दाखिल नहीं हुए हैं। क्या खाना चाहिए इसके बजाय कितना खाना चाहिए यह वस्तु आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक महत्त्व की है। एक आदमी मामूली दाल-रोटी खाता है—जो कि शायद राजस अन्न समझा जायगा—लेकिन ठीक मात्रा में खाता है, जिह्वा पर काबू रखता है, स्वाद की वृत्ति नहीं रखता, तो आध्यात्मिक दृष्टि से उसकी योग्यता अधिक है; बनिस्बत उसके, जो कि सात्त्विक आहार करता है, लेकिन परिमाण में अधिक खा लेता है, और स्वाद चखने की वृत्ति रखता है।

मैं जानता हूं कि जैनों में क्या खाना, क्या न खाना इसीका

विचार अधिक चलता है। लेकिन मेरे विचार में अस्वाद-वृत्ति और परिमित आहार का ही अधिक महत्त्व है।

दिल्ली
२१-४-४८

: १४ :

हमारा कर्तव्य

आज मैंने सोचा है कि आपका ध्यान शरणार्थियों के सवाल की तरफ खीचूं। क्योंकि मैं देख रहा हूं कि उनकी हालत बहुत बुरी है। शरीर के एक अवयव में अगर जख्म हो जाता है, तो बाकी सारे अवयवों के खुशहाल होते हुए भी हमारा ध्यान उसी जख्मी अवयव की तरफ जाता है। अच्छा समाज एक शरीर-जैसा होना चाहिए। समाज में जो दुखी हिस्सा होता है, उसकी ओर सबका ध्यान जाना चाहिए। लेकिन यहां ऐसा नहीं हो रहा है। मैंने जो देखा और सुना है वह एक अत्यंत दयनीय कहानी है। लोग टेंटों-तंबुओं में पड़े हैं। वहां पेड़ों का तो नाम भी नहीं है। गरमी के दिनों में उनमें रहना मुश्किल है। कुछ टेंट तो ऐसे हैं कि उनमें खड़े होकर प्रवेश भी नहीं कर सकते। लोगों को ठीक से काम नहीं मिल रहा है। सब तरह से उनकी बुरी हालत है। सरकार अपनी ओर से कुछ कर रही है, लेकिन वह बिलकुल ना-काफी है। हम सबको उसमें ध्यान देना चाहिए।

हर एक व्यक्ति उनके लिए जो कुछ कर सकता है, करे। कैंप में जाकर जो मदद दे सकते हैं, देनी चाहिए। कोई धंधा दिलवाने में सहायता दे सकते हैं, तो वह देनी चाहिए। किसीके घर में जगह हो तो उनको वहां रख लेना चाहिए। किसी अनाथ लड़के को अपना लड़का समझकर उसका पालन-पोषण करना चाहिए। जिससे जो बन सकता है, करना चाहिए।

किसी कुएं में हम बालटी डाल कर पानी लेते हैं तो बालटी की जगह पर पानी में गड्ढा नहीं पड़ता। आसपास का पानी फौरन दौड़ कर पड़नेवाले गड्ढे को भर देता है। पानी कम होने से सारी सतह नीचे चली जाती है, लेकिन पानी में गड्ढा नहीं पड़ता। इससे उलटा जुवार के ढेर में होता है। ढेर में से एक सेर जुवार हमने निकाल ली तो उस जगह पर उतना गड्ढा पड़ जाता है। आसपास के थोड़े दाने—जो महात्मा होते हैं—उस गड्ढे की पूर्ति करने के लिए दौड़ जाते हैं, लेकिन बाकी सारे वैसे के वैसे बैठे रहते हैं। समाज की हालत कुएं के पानी-जैसी होनी चाहिए। सब तरफ से दौड़ कर मदद के लिए जाना चाहिए। लोग इस तरह करेंगे तो हमारी सरकार को सहूलियत होगी, और कुछ राहत मिलेगी। उसे राहत की सख्त जरूरत है। काम बहुत बड़ा है। अकेली सरकार से वह पार पड़ता नहीं दीखता है। सब का जोर लगेगा तभी वह पूरा होगा।

हमारे काम का दूसरा नतीजा यह होगा कि उससे लोकमत बनेगा। लोकशाही सरकार को लोकमत गति देनेवाली

चीज होती है। वही लोकशाही सरकार की खसूसियत—शक्ति—है। इसी में उसकी ताकत है, और इसी में कमजोरी। अगर लोकमत सुस्त होता है, तो लोकशाही सरकार सुस्त बन जाती है। वह जागृत होता है, तो उसको चाहना मिलती है। इसलिए हर एक को अपनी-अपनी शक्ति इस काम में लगा देनी चाहिए और लोकमत जागृत करना चाहिए। नहीं तो सारे हिंदुस्तान में जहर फैलेगा, जिसको काबू में लाना दुश्वार हो जायगा। इसलिए समय पर ही चेत जाना अच्छा है।

शरणार्थियों के बारे में जैसे कोशिश करनी है वैसे उन मुसलमान भाइयों के बारे में भी करनी है, जो हैं तो हिंदुस्तान में ही, लेकिन फसाद के समय डर कर अपने स्थानों को छोड़ कर भाग गए थे। यहां से जो पाकिस्तान चले गए हैं उनकी बात अभी मैं नहीं कर रहा हूं। जो यहीं कहीं आश्रय लेकर रह रहे हैं, उनको फिर से अपने घरों में बसाने की बात कर रहा हूं। यह काम तो फौरन होना चाहिए। अपने स्थान पर वापस लौटने में उन्हें डर मालूम होता हो तो वह हमारे लिए शोभा नहीं देता, न उसमें हमारी बहादुरी ही है। बहादुर तो वह है जो न किसी से डरता है, न जिससे किसी के दिल में डर पैदा होता है। मुसलमान भाइयों को हमारे पास आने में अगर डर लगता हो, तो हम ही खुद निडर नहीं बने ऐसा उसका अर्थ होता है। बहादुर मौके पर लड़ता है, तो कर्तव्य-बुद्धि से लड़ता है, द्वेष-बुद्धि से नहीं लड़ता। द्वेष-बुद्धि से ताकत बढ़ती नहीं, बल्कि घटती है। उससे हम तो

कमजोर बनते ही हैं, मगर आसपास का वातावरण भी हम कमजोर बनाते हैं। इसीलिए ज्ञानियों ने कहा है कि 'बहादुर अपने दोनों हाथों में अद्वेष लेकर जायगा'—अद्वेषो हस्तयोर्दधे। हमें द्वेष-बुद्धि छोड़कर निडर बनना है, और दूसरों को निडर बनाना है।

कुछ लोग ऐसी बातों में पाकिस्तान की तरफ देखा करते हैं। मैं कहता हूं, यह दुर्बुद्धि है, और यदि सोचेंगे तो मालूम होगा कि वह मूर्खता भी है। दूसरे को देख कर चलते हैं तो हम अपनी चोटी उसके हाथ में दे देते हैं। फिर इस तरह हम बंदर बन जाते हैं और वह हो जाता है हमें नचानेवाला। वह जैसे नचायेगा वैसे हम नाचेंगे। इससे हम अपने इनीशिए-टिव्ह—अभिक्रम को खोते हैं, और पूरे गुलाम बन जाते हैं। अगर हमें वैसे गुलाम नहीं बनना है, तो हमें खुद ही जिसे हम ठीक समझते हैं वह करना चाहिए। हम अगर ठीक रास्ते से चलते हैं, यहां की अल्प संख्या को रक्षण देते हैं, तो सामने-वाले को भी उसी तरह करना पड़ेगा। अगर वह वैसा नहीं करेगा तो खुद ही खतरे में पड़ेगा। गीता ने हमें यही सिखाया है न? 'कर्तव्य-कर्म करो, फल की चिंता छोड़ो'। हमारा कर्म ठीक है या नहीं हम इसी की चिंता रखें, फल की चिंता वह कर्म ही रखेगा। काम ठीक होगा तो नतीजा ठीक ही निकलने-वाला है, ऐसा निश्चय हमें हो जाना चाहिए।

इस तरह काम करेंगे तो हम सही रास्ते पर रहेंगे। नहीं तो गुमराह हो जायंगे। हम गुमराह हो जाते हैं तो दूसरा भी गुमराह होता है; और एक ऐसा दुष्ट-चक्र चलता है, जो

किसी के भी हाथ में नहीं रहता। फिर दोनों तीसरे के तावे हो जाते हैं। इसलिए हमने जो आजादी हासिल की है उसको अगर टिकाना है तो हमें अपने दिमाग ठिकाने पर रखने चाहिए, स्वस्थ-चित्त बनना चाहिए, भाई भाई की तरह रहना चाहिए। शंकाशील नहीं बनना चाहिए। शंका से शंका बढ़ती है, और विश्वास से विश्वास बढ़ता है यह अनुभव का शास्त्र है।

राजघाट दिल्ली,
शुक्रवार २३-४-४८

: १५ :

मुसलमानों में विश्वास पैदा करो

इस गांव में मैं खास उद्देश्य से आया हूं। क्योंकि मैंने सुना था कि बूड़िया की हालत बिलकुल अलग है। पूर्वी पंजाब के बहुत सारे मुसलमान पाकिस्तान चले गए हैं। उधर गुड़गांव की तरफ कुछ मुसलमान बाकी हैं, और इधर बूड़िया में कुछ हैं। वे थोड़ी तादाद में हैं। लेकिन उनको पाकिस्तान भेजने का इंतजाम किये जाने पर भी उन्होंने जाना पसंद नहीं किया और वे यहीं ठहर गए। यहां उनकी रक्षा के लिए कुछ मिलिटरी भी रखी हुई है। यह सारा हाल जब मैंने सुना तो सोचा कि इस गांव में आकर मुसलमान भाइयों से, तथा यहां आये हुए शरणार्थियों से मिलूं, और दोनों में मुहब्बत बढ़ाने की कोशिश करूं।

यहां आकर सब भाइयों से मिला, और उनकी बातें सुनीं। यहां जो शरणार्थी पश्चिमी पंजाब से आए हैं वे काफी दुःख में हैं। उनको घर तो मिल गए हैं, लेकिन पश्चिमी पंजाब में वे जिस तरह रहते थे वैसी व्यवस्था तो यहां नहीं हुई है। जो मुसलमान भाई यहां रह गए हैं वे भी दुःख में हैं। दो दुःखी मिल जायं तो दोनों में एक दूसरे के प्रति हमदर्दी होनी चाहिए। कुंती का किस्सा मशहूर है। जब भगवान उन पर प्रसन्न हुए, और उनसे वर मांगने को कहा, तो उन्होंने मांगा—"विपदः संतु नः शश्वत्"—यानी मुझे हमेशा दुःख ही रहे। यह सुन कर भगवान बोले, "यह कैसा वर मांगती है ?" कुंती ने कहा "दुःख रहता है तो दुःखियों के प्रति हमदर्दी रहती है, और भगवान का निरंतर स्मरण रहता है। सुख में मनुष्य का हृदय निठुर बन जाता है, वे भगवान को भूल जाते हैं।" लेकिन यहां मैं देखता हूं कि दोनों के दुःखी होते हुए भी हमदर्दी पैदा नहीं हो रही है। मुसलमानों के दिलों में खौफ है। मिलिटरी उठ जायगी तो क्या होगा ? यहां जो दूसरे भाई रहते हैं उनके लिए यह शरम की बात है। हम जंगली जानवर थोड़े ही हैं कि हमसे दूसरों को डर लगे ? हमें तो उन्हें विश्वास दिलाना चाहिए कि अगर उनपर कुछ आफत आएगी तो हम बीच में पड़ेंगे। पहले हमारी जान जायगी, फिर उनकी। हम ऐसा करेंगे तो उनमें विश्वास पैदा होगा।

वैसे ही मुसलमानों को भी मैं कहूंगा कि उन्हें डर छोड़ देना चाहिए। कुरान में यह बात बार-बार आई है कि भग-

वान पर जिसका भरोसा है वह दुनिया में किसी से नहीं डरता। जब तक भगवान चाहता है तब तक मनुष्य इस दुनिया में रहता है, और जब वह उसको उठा लेना चाहता है तब वह उठ जाता है। ईश्वर की इच्छा के बगैर पेड़ की एक पत्ती भी नहीं हिलती। फिर डर काहे का?

मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप लोग यहां भाई-भाई जैसे रहें। हिंदुस्तान में कुछ मुसलमान रहना पसंद करते हैं तो यह हमारे लिए अभिमान की बात है। इसी में हमारे धर्म की भी प्रतिष्ठा है। सब धर्मों ने यही कहा है कि आपस में प्रेम से रहो। इन चंद भाइयों का जिम्मा अगर हम नहीं उठाते हैं तो हिंदुस्तान के लिए हमें जो करना चाहिए वह हम नहीं करते हैं, और अपनी सरकार की ताकत कम करते हैं। यह सरकार हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ख्रिस्ती आदि सब धर्मों के लोगों की है, बशर्ते कि सब प्रेम से रहें। सरकार का कर्तव्य सब की पूरी रक्षा करने का है। मुसलमान अपने घर छोड़ कर चले गए हैं, वे अगर अपने घरों में वापस आ जायंगे तो फिर हमारा क्या होगा, यह चिंता शरणार्थियों को नहीं करनी चाहिए। सरकार सब की चिंता करने के लिए समर्थ है। दोनों के हितों में संघर्ष न आवे ऐसी व्यवस्था सरकार कर सकती है, और करेगी, मेरा ऐसा विश्वास है।

आपके इस छोटे गांव में आकर मुझे समाधान हुआ है। जहां-जहां डर है वहां जाकर मैं हिम्मत देना चाहता हूं। पर हिम्मत तो अंदर से आनी चाहिए। लेकिन बाहर का निमित्त भी कभी-कभी मददगार हो जाता है। इसमें किसी पर मैं एहसान

नहीं करता, बल्कि अपना कर्तव्य करता हूं। यहां के लोगों का—मुसलमानों का भी—रतनअमोलसिंह पर विश्वास देख कर मुझे आनंद हुआ। एक सिक्ख भाई मुसलमानों का विश्वास संपादन कर सके यह अच्छा उदाहरण है। ऐसे दूसरे भी उदाहरण हैं। कई जगह हिंदुओं ने मुसलमानों की रक्षा की है, और मुसलमानों ने हिंदुओं की। हिंदुस्तान में ऐसे बनाव बने यही उसकी उन्नति का आश्वासन है।

बूरिया (अम्बाला)
पूर्वी पंजाब
२४-४-४८

: १६ :

कांग्रेसजनों का कर्तव्य

आज गांधीजी के महाप्रयाण का दिन है। उनकी मृत्यु को आज तीन महीने पूरे होते हैं। महापुरुषों का जीवन और मरण दोनों एक ही मतलब रखते हैं। जब वे शरीर में रहते हैं तब भी शरीर से परे होते हैं। उनका जीवन विचारमय होता है। जब शरीर छूट जाता है, तब उपाधि छूट जाने के कारण विचार का जोर बढ़ता है, और सबको धक्का देने लगता है। मुझे तो इसका निरंतर अनुभव आता है। उस स्मरण से आत्मपरीक्षण के लिए स्फूर्ति मिलती है, और नित्य निरीक्षण होता रहता है। उस स्फूर्ति को लेकर हमें तो हमारे सामने

जो सेवा पड़ी है उसे करते रहना चाहिए, और उसमें कहांतक प्रगति हुई है यह बार-बार देखना चाहिए।

पिछली बार मैंने शरणार्थियों के प्रश्न की ओर आपका ध्यान खींचा था। आज भी उसी विषय पर बोलना चाहता हूं। चार हफ्ते पहले मैं कैम्पों को देखने गया था। उस समय पानीपत में बिलकुल ही छोटे टेंट (तंबू) देखे थे, जिनका जिक्र मैंने पिछले भाषण में किया था। ऐसे छोटे टेंट कई जगह हैं। उन्हें फौरन हटा देना उसी समय तय हो गया था, लेकिन तीन-चार हफ्ते बीतने पर भी उन्हें नहीं हटाया जा सका है। दिन-ब-दिन सूर्यनारायण तपते जा रहे हैं। उन टेंटों के अन्दर बच्चों की क्या हालत होती होगी यह सोचता हूं तो मुझे चूल्हे पर उबालने के लिए रखे हुए आलू की मिसाल याद आती है। उनके दुःख का अधिक वर्णन करके मैं वाणी को श्रम नहीं देना चाहता हूं। आपके भी बाल-बच्चे हैं, आप थोड़े में समझ सकते हैं। यह काम जल्दी नहीं हो रहा है। इसके लिए मैं किसीको दोष नहीं देना चाहता; क्योंकि जिस किसीको मैं दोष दूंगा वह मेरा ही रूप होगा। इसलिए अगर मैं दोष देखना चाहूं तो निज का ही देखना चाहूंगा।

अभी मैं कांग्रेस के कार्यकर्ताओं का विशेष ध्यान इस ओर खींचना चाहता हूं। गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने रक्खा, और बार-बार उस पर जोर दिया। शरणार्थियों की सेवा सारे रचनात्मक कामों में शिरोमणि है। रचनात्मक कामों के जितने पहलू हैं इसमें उन सबका उपयोग होता है, सब

इसमें आ जाते हैं। इस काम के लिए कांग्रेस की एक शरणार्थी-सेवा-समिति है। लेकिन उसपर सब कुछ नहीं छोड़ना चाहिए। यह सबका काम है। हर एक कार्यकर्ता को इसमें भाग लेना चाहिए। घर-घर जाकर लोगों को समझाना चाहिए। क्या कोई अपने घर में किसी शरणार्थी को रख सकता है? यह देखना चाहिए।

लेकिन अबतक कांग्रेसवालों को रचनात्मक कामों में दिलचस्पी कम रही है। अबतक जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब वैसे नहीं होना चाहिए। अबतक के लिए क्षमा भी हो सकती है। क्योंकि उस समय देश के सामने मुख्य सवाल था अंग्रेजों को यहांसे निकालने का। जो रचनात्मक काम करते थे, उनकी भी नजर उसी सवाल पर लगी रहती थी। अंग्रेजों को निकालने में रचनात्मक कामों की कैसी मदद हो सकती है, यही लोगों को समझाना पड़ता था। "उससे जनता में पहुंचने का हमें मौका मिलता है, जनता जागृत होकर संगठित होती है और फिर देश में शक्ति पैदा होती है, जिससे राजनीतिक कार्य में काफी मदद मिलती है", इस तरह समझाकर रचनात्मक कामों को बढ़ाने की हम कोशिश करते रहे। इस तरह कुछ काम तो चला, लेकिन कांग्रेसवालों को उसमें दिलचस्पी नहीं रही।

अब तो अंग्रेज गए। अब रचनात्मक कार्यक्रम का ही अवसर आया है, क्योंकि राष्ट्र-निर्माण करना है। हर एक काम के दो पहलू होते हैं। एक होता है, असद्-वृत्ति का विनाश; और दूसरा होता है, सद्वृत्ति का विकास। दोनों की जरूरत

होती है। अगर केवल विनाश के पहलू पर ही ध्यान रहा, और विकास के कार्य में दिलचस्पी न रही, तो जैसे कि उपनिषदों ने कहा है—मनुष्य अंधेरे में प्रवेश करता है। उन दिनों विनाश के कार्यक्रम की बात थी, तो उसमें त्याग भी करना पड़ता था, तरह-तरह की मुसीबतें उठानी पड़ती थीं। अब तो यह बात नहीं रही। ऐसी हालत में अगर मनोवृत्ति वही रही, तो कार्यकर्ताओं में भोगपरायणता आएगी, जिससे कांग्रेस निकम्मी बन जायगी। लेकिन अभी अगर वे शरणार्थियों का काम हाथ में ले लेते हैं तो कांग्रेस को परिश्रम करने का मौका मिलेगा, और जनता से उसका संपर्क बढ़ेगा। आज तो कांग्रेसवालों का जनता से संपर्क भी कम हो रहा है। समाजवादी कांग्रेस में से निकल गए हैं। दूसरे नौजवान असंतुष्ट हैं। बाकी लोगों में से कुछ सरकार में संमिलित हो गए हैं, और कुछ सत्ता-परायण बन गए हैं। सत्ता-परायण वृत्ति ही रही तो कांग्रेसवाले आपस में लड़ते रहेंगे, पक्षोपपक्ष बढ़ेंगे और कांग्रेस निस्तेज हो जायगी। उससे तो कांग्रेस को अभी ही खत्म करना अच्छा है, जिससे कम-से-कम उसका अच्छा स्मरण तो बना रहेगा। अगर भोग-वृत्ति से, आलस्य से उसके तेज को क्षीण होने देंगे तो उसका अच्छा स्मरण भी दूषित हो जायगा।

इसलिए कांग्रेस के कार्यकर्ताओं से मेरी प्रार्थना है कि वे शरणार्थियों के काम को अपनाएं। उससे उनकी चित्त-शुद्धि होगी और दुःखी भाइयों को मौके पर मदद मिल जायगी। दुःख के समय देश ने उन्हें मदद दी इस बात से उनके दिल में देश के प्रति उपकार-बुद्धि और प्रेम रहेगा; तो आगे चलकर

उनमें से भी अच्छे देश-सेवक पैदा होंगे। बाकी के सब काम जरा अलग रखकर हम इस समय इसी काम में लग जांय तो कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि दूसरे सारे काम इसमें चरितार्थ होंगे। समुद्र-स्नान में सारी नदियों के स्नान का पुण्य मिल जाता है, वैसी यह बात है।

राजघाट, दिल्ली
३०-४-४८

: १७ :

मूर्ति-पूजा का रहस्य

जेल में भाई गोविंददासजी से मेरा परिचय हुआ था। तबसे हमारा मानसिक संबंध दृढ़ बन गया है। उनके मन में था कि इस मंदिर का उद्घाटन मैं करूं। उन्होंने मुझे सूचित भी किया था। लेकिन मेरा कुछ हठीला स्वभाव रहा है। मैं देहात की सेवा में लगा था। उनका तो शायद यह काम मुझसे ही लेने का निश्चय था। आखिर भगवान की इच्छा से मुझे अपना काम छोड़ कर दिल्ली जाना पड़ा। यह देखते ही गोविंददासजी ने मुझे पकड़ लिया। अब उन्हें मैं इन्कार नहीं कर सका, और यहां आ गया हूं।

यह मंदिर आरंभ से ही हरिजन समेत सबके लिए खोला जा रहा है, यह कोई विशेष बात नहीं मानी जानी

चाहिए। लेकिन मानी जाती है। क्योंकि बीच के जमाने में हिंदुओं के मंदिर सबके लिए खुले नहीं थे, और अब भी सारे नहीं खुले हैं। उस समय शायद इस प्रतिबंध के पीछे कुछ विचार भी रहा हो। लेकिन आज की हालत में हरिजनों को मंदिर में न आने देना अधर्म ही है। उसे दूर करने की बहुतों ने कोशिश की, और वह भावना अब कम होती जा रही है। हमारे धर्म में प्राचीन काल से यह बात नहीं थी। वेदों में "पञ्चजनाः यज्ञीयास"—यानी यज्ञ के योग्य पंचजन, ऐसा उल्लेख आया है। पंचजन का मतलब है सारा मानव-समाज। ब्राह्मण आदि चार वर्ण और उनके बाहर जो बचे वे पंचम, मिलाकर सारा मानव-समाज पंचजन में आ जाता है। गीता में भगवान के शंख को 'पांचजन्य' नाम दिया है। भगवान के शंख की आवाज पंचजन के, यानी सबके लिए है ऐसा उसका मतलब है। इस तरह प्राचीन काल में वैदिक धर्म मानव-मानव में भेद नहीं करता था। लेकिन बीच में संकीर्णता आ गई, जिससे अस्पृश्यता का विचार उत्पन्न हुआ। वह अब जा रहा है यह खुशी की बात है।

इस मंदिर में हरिजनों को प्रवेश मिल रहा है, इसके अलावा सब धर्मों के ग्रंथों की प्रतिष्ठापना का एक विशेष कार्य भी यहां किया जा रहा है। वर्धा के एक व्याख्यान में मैंने सुझाया था कि हरिजनों को मंदिर-प्रवेश देनेमात्र से मंदिर-सुधार का काम पूरा नहीं होता। अब तो एक कदम आगे बढ़ कर मंदिरों की मार्फत सब धर्मों के समन्वय का काम होना चाहिए। हिंदुस्तान की यह विशेषता है कि अच्छे

विचारों का वह निरंतर समन्वय करता आया है। शंकर आदि महान् आचार्यों ने अपनी बुद्धि इसीमें लगाई थी। जैनों ने तो समन्वय का सिद्धांत ही मान लिया है। उसे वे सम्यक्त्व कहते हैं। हर एक चीज के अनेक पहलू होते हैं, उन सबको मिला कर साथ का पूरा दर्शन होता है। इसलिए किसी एक ही पहलू का आग्रह नहीं रखना चाहिए। यह समन्वय की दृष्टि है। इस तरह का समन्वय, प्राचीन काल में उपनिषद्, गीता आदि का हुआ । बाद में मध्य युग में शैव, वैष्णव आदि पंथों का भी हुआ। अब भिन्न-भिन्न धर्मों का समन्वय करना बाकी है। हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, आदि अनेक धर्म यहां हैं। हिंदुस्तान ने सबका स्वागत किया है। ईसाई धर्म तो—जैसा कि अकसर लोग नहीं जानते हैं—ईसा की मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही ईसा का शिष्य सेंट टामस हिंदुस्तान में लाया। मलबार में उसका मिशन काम करता रहा। इतने प्राचीन काल से उस धर्म को हिंदुस्तान ने यहां स्थान दिया। इसी तरह पारसी, यहूदी आदि दूसरे धर्मों को भी हिंदुस्तान ने स्थान दिया। यह इसी समन्वय की भावना से हो सका है। लेकिन सर्व-धर्म-समन्वय का प्रत्यक्ष कार्य अबतक नहीं हुआ है। वह अब मंदिरों को करना है। इस मंदिर में सब धर्मों को स्थान देना इस विचार की स्वीकृति है। मैं मानता हूं कि हिंदूधर्म के उपासक यह समन्वय पूरा किये बगैर नहीं रहेंगे।

मंदिरों पर अनेक आक्षेप किये जाते हैं। यहां उन पर थोड़ा विचार करना ठीक होगा। उनमें एक आक्षेप यह है :—

"मंदिरों में कई तरह का अनाचार होता आया है, और हो रहा है। कई मंदिर व्यभिचार के अड्डे बन गए हैं। इसलिए मंदिरों को खतम ही करना चाहिए।" दरअसल यह कोई विचार का आक्षेप नहीं है। यह एक प्रतिक्रियामात्र है। मंदिरों में से अगर अनाचार मिट जायं, तो यह आक्षेप स्वयं खतम हो जाता है। और यही उसमें से लेना है। मंदिरों में अगर अनाचार निहित ही होता, जैसे अग्नि के साथ धुआं होता है, तो मंदिर तोड़ने पड़ते। लेकिन वैसी बात नहीं है, इसलिए इस आक्षेप को हम छोड़ दें।

दूसरा आक्षेप यह है। "ईश्वर को किसीने देखा नहीं है। श्रद्धा से उसे मान लेते हैं। और उस श्रद्धा के आधार पर मंदिर बनाकर पूजा करते हैं। यह मिथ्याचार है"। ईश्वर के अस्तित्व के बारे में मैं दलील नहीं करूंगा। इतना ही कहूंगा कि यह आक्षेप अविचार-मूलक है। उसमें कुछ अहंकार भी है। अनेक सत्पुरुषों ने ईश्वर का साक्षात्कार और वर्णन भी किया है। ऐसी हालत में हम यह कहने का साहस कैसे कर सकते हैं कि ईश्वर है ही नहीं ? हम इतना ही कह सकते हैं कि हमने उसको देखा नहीं है। लेकिन जिन्होंने ईश्वर-साक्षात्कार का वर्णन किया है वे भ्रांत या मिथ्यावादी थे ऐसा हम नहीं मान सकते हैं। और उन सत्पुरुषों की बात मानकर जो श्रद्धा से ईश्वर की पूजा करते हैं, उनको हम दोष भी नहीं दे सकते हैं। मैं कभी इंग्लैंड नहीं गया, लेकिन इंग्लैंड नाम का एक देश है इस बारे में मुझे शंका नहीं है। क्योंकि मैंने नहीं, तो भी दूसरों ने इंग्लैंड देखा है। ऐसे कई

दृष्टांत दिये जा सकते हैं। व्यवहार में हर चीज को निज अनुभव से ही हम मानते हैं ऐसा नहीं होता।

तीसरा भी एक आक्षेप तात्त्विक विचार का है। "परमेश्वर किसी एक ही मूर्ति में नहीं हो सकता, वह तो सब जगह है। 'सब में रम रहिया प्रभु एकै, पेख पेख नानक बिहँसाई,' सब दुनिया में ईश्वर भरा है, उसे देख कर आत्मानंद का अनुभव करना चाहिए। उसके बदले मूर्ति-विशेष की पूजा करने का अर्थ यह होगा कि परमेश्वर दूसरी जगह नहीं है। इसलिए ऐसी पूजा उचित नहीं है।" मेरी नम्र राय है कि यह आक्षेप भी एकांगी है। परमेश्वर का वर्णन एक ही तरह के विशेषण से नहीं हो सकता। मनुष्य की वाणी में उसका वर्णन करने की शक्ति ही नहीं है। फिर भी मनुष्य अपने समाधान के लिए उसका वर्णन करने की चेष्टा करता है तो विरोधी विशेषणों का प्रयोग करना पड़ता है। परमेश्वर के व्यापक होने पर भी मूर्ति-विशेष में उसकी अभिव्यक्ति हो सकती है। दुनिया में बिजली भरी है, लेकिन विशेष तरकीब से, विशेष स्थान में वह प्रगट होती है। वैसे जहां हमारी मानसिक भावना रहती है वहां परमेश्वर हमारे लिए प्रगट हो जाता है। अपनी भावना के अनुसार मनुष्य उपासना करता है तो उसमें परमेश्वर की व्यापकता का निषेध नहीं है। स्वामी दयानंदजी किसी मूर्ति को देखने गये तो उन्हें उस पर चूहे खेलते हुए दिखाई दिये। उनके मन में विचार आया कि यह कैसा भगवान है जिसपर चूहे खेलते हैं? फिर वे चिंतन में मग्न हो गए। और विश्वव्यापक भगवान का ध्यान

करने लगे। उनके दृष्टांत का मैं खंडन नहीं करना चाहता हूं। क्योंकि किसी दृष्टांत के निमित्त से कभी कोई महान् विचार मनुष्य को मिल जाता है। लेकिन उस दृष्टांत से मुझे उलटा ही विचार सूझा। मुझे लगा—जिसपर चूहे खेलते होंगे वह जरूर भगवानं होना चाहिए। चूहे भगवान के बदन पर नहीं खेलेंगे तो क्या बिल्ली के बदन पर खेलेंगे ? सारांश, जैसा सोचेंगे वैसा सूझेगा।

और भी एक आक्षेप आता है। "हमें तो मानव की सेवा करनी चाहिए। किसी प्यासे को पानी पिलाना, भूखे को खिलाना, गंदे को नहलाना यही परमेश्वर की सर्वोत्तम सेवा है। मानव-रूप में जो ईश्वर है उसकी उपेक्षा करके अनखाने देव को नैवेद्य चढ़ाना यह काहेका धर्म ?"। इस आक्षेप में भी विचार-दोष है। जो मनुष्य के साथ दयालु बर्ताव नहीं करता और पाषाण-मूर्ति की पूजा करता रहता है, वह ढोंगी कहा जा सकता है। लेकिन जो मनुष्य प्राणि-सेवा में मग्न है उसे भी मूर्ति-पूजा उपयुक्त हो सकती है। मानव की सेवा मानव का सर्व-प्रथम कर्तव्य है इसमें कोई शंका नहीं। लेकिन हम देखते हैं कि मानवों में विकार होते हैं। जो सेवा करता है उसमें और जिसकी सेवा की जाती है उसमें भी। ऐसी दशा में हमारी सेवा में भी दोष पैदा हो जाता है, और मानव में भगवान का अंश देखने का भाव हमेशा नहीं टिकता। जिसकी सेवा की जाती है उसके विकार की प्रतिक्रिया सेवा करनेवाले के मन पर होती है। इसका एक उपाय मानव ने यह किया कि निर्विकार पत्थर को प्रतीक मान कर उसमें

मानव की परिपूर्ण आकांक्षा भर दी। दूसरी भाषा में, उस निर्विकार पत्थर में ईश्वर का आरोपण करके उसकी वह पूजा करने लगा। और उसकी पूजा द्वारा अपने अहंकार और विकार को शून्य बनाने की कोशिश करने लगा। मानव का परम आदर्श वही मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान माना गया है। योगसूत्र ने भगवान की व्याख्या "रागद्वेषादि-रहित पुरुष विशेष" ऐसी की है। उसकी उपासना करने से मनुष्य धीरे-धीरे निरहंकार बनता है। एक भाई ने मुझसे पूछा, प्रार्थना में इतना समय क्यों दिया जाता है? वह भी सेवा में लगाना बेहतर नहीं होगा? मैंने कहा 'सेवा की कीमत उसके परिमाण पर निर्भर नहीं है। सेवा में वृत्ति जितनी निरहंकार रहेगी उतनी सेवा की कीमत बढ़ेगी। मैंने दस सेर सेवा की, लेकिन चालीस सेर मेरा अहंकार रहा तो मेरी सेवा की कीमत $\frac{१०}{४०}$ यानी $\frac{१}{४}$ हो गई। इससे उलटे एक मनुष्य ने एक तोला भर सेवा की, लेकिन उसका अहंकार शून्य है, तो उसकी सेवा की कीमत $\frac{१}{०}$ तोला, यानी अनंत होगी। हम जानते हैं कि गणित में विभाजक शून्य रहा तो भागाकार अनंत आता है। अहंकार शून्य करने में प्रार्थना मदद दे सकती है। निरहंकारता से सेवा की कीमत बढ़ती है, और अहंकार से घटती है। सुदामा के मुट्ठीभर तंदुल की कीमत उसकी निरहंकारता के कारण पृथ्वी के मूल्य की हो गई। सोचने से मालूम होगा कि इसमें गहरा सार भरा है। पत्थर की मूर्ति खड़ी करके उसके सामने सिर झुका कर साधक निरहंकारता का अभ्यास करते हैं। मूर्तिपूजा अभ्यास का एक साधन है। अभ्यास की दृष्टि

रही तो साधन काम आते हैं। अभ्यास की दृष्टि न रही तो उत्तम साधन भी निकम्मे हो जाते हैं। लेकिन उसमें साधन का दोष नहीं है, दृष्टि के अभाव का दोष है।

जिन्होंने भगवान की मूर्ति की कल्पना की वे पागल नहीं थे। उससे मनुष्य की काफ़ी चित्तशुद्धि हुई है। एक ज़माना था जब मनुष्यने अपनी कला और सौंदर्यवृत्ति का सारा प्रदर्शन मंदिरों में किया। मूर्ति में भगवान की भावना करके मनुष्य ने अपना विकास किया। मूर्ति न होती तो बगीचे में से—फूल तोड़ कर मनुष्य उसको अपनी नाक में लगाता। लेकिन भगवान की मूर्ति पर फूल चढ़ा कर—जो कि फूल के लिए सर्वोत्तम स्थान है—मनुष्य ने अपनी गंधवासना संयत और उन्नत की। अपनी वासना को मिटाने के लिए भगवान के समर्पण की युक्ति मनुष्य ने निकाली। रामदास स्वामी ने लिखा है "देवाचें वैभव वाढ़वावें"—भगवान का वैभव बढ़ाओ। हम भगवानका वैभव क्या बढ़ायेंगे? वह महान् है, हम रंक हैं। परमेश्वर का वैभव बढ़ाने की कोशिश करने में हम अपना जीवन उन्नत करते हैं। रामदास स्वामी की सीख शिवाजी ने समझ ली। रायगढ़ में, जो शिवाजी की राजधानी थी, उसने अपने लिए मकान बनाये जिनकी निशानी तक बाकी नहीं रही; और प्रतापगढ़ में उसने देवीका मंदिर बनाया, जिसे २५० साल के बाद भी मैंने अच्छी हालत में देखा है। रामदास स्वामी की शिक्षा का यह दर्शन था।

मेरे भाइयो! भगवान का वैभव बढ़ाना, यही चीज़ मानव-देह में करने लायक है। वाणी से भगवान का गुणगान

करें, हाथों से उसकी सेवा करें, और अपनी बुद्धि को शुद्ध बनाएं। बुद्धि की शुद्धि के लिए भगवान की भक्ति से बढ़ कर कोई भी साधन आजतक अनुभव में नहीं आया। शंकराचार्य महान् ज्ञानी हुए। अद्वैत की गर्जना करते थे। लेकिन मलबार से चलकर हिमालय की तरफ जाते हुए रास्ते में जो बड़े-बड़े मंदिर मिले उन पर उन्होंने स्तोत्र रचे हैं। कितने नम्र वे बने ? क्या वे नहीं जानते थे कि यह पत्थर की मूर्ति मनुष्य के द्वारा बनाई हुई है ? यह भगवान कैसे हो सकती है ? लेकिन मूर्ति के सामने उनका सिर झुक जाता था। नदियों पर भी उन्होंने सुंदर स्तोत्र रचे। सार इतना ही है कि किसी तरह भगवान की भक्ति करो और चित्तशुद्धि साध लो। मानव-देह का यही अधिकार है। यह जिन्होंने समझा उनका जीवन धन्य हुआ।

मानव-देह कितनी कीमती चीज़ है ? लेकिन हमने आजादी के अवसर पर मानव की प्रतिष्ठा खोई है। किसी को कतल करना मामूली बात हो गई है। बच्चों को भी कतल करते हैं। स्त्रियों की बेइज्जती करते हैं। और यह सब धर्म-रक्षा के नाम पर करते हैं। जिस देश में वेद भगवान का अवतार हुआ, जहां उपनिषद् का निर्माण हुआ, अनेक संत पुरुषों ने जिस भूमि को पावन किया, उस भूमि वाले हम लोग कितने गिर गये। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि हमें वह सद्बुद्धि दें।

खंडवा
७-५-४८

: १८ :

सब धर्मों की सिखावन

यहां, अजमेर में मैं उर्स के निमित्त आया हूं। गांधीजी ने इस मौके पर यहां आने का वादा किया था। लेकिन उस वादे को वे पूरा नहीं कर सके। इसलिए मैंने यहां आना अपना फर्ज समझा।

ऐसे उत्सवों का पड़ना हरएक के लिए आनंद और संतोष का प्रसंग होना चाहिए। लेकिन दुर्दैव की बात है कि आज हिंदुस्तान में ऐसी हवा चली है कि कभी धार्मिक उत्सव आता है तो डर-सा छा जाता है। दशहरा आता है, ईद आती है तो डर हो जाता है कि न मालूम अब क्या होगा, ऐसी दुर्दशा हिंदुस्तान की हुई है। लेकिन इस वृत्ति का धर्म से कोई संबंध नहीं है। धर्म के नाम का उपयोग करके राजकीय महत्वाकांक्षा रखनेवाले लोगों को बहकाते हैं। जो सच्ची धर्म-निष्ठा रखते हैं उन्हें इन बुरी बातों से बचना चाहिए।

यहां अजमेर में सब धर्म के लोग रहते हैं। अनेक धर्मों का यह केन्द्र है। मुसल्मानों का तो यह मशहूर केन्द्र है। हिंदुओं का भी है। आर्यसमाजी भी यहां काम करते आए हैं। जैन भी यहां के प्रसिद्ध हैं। इस तरह जहां सब धर्मों के लोग रहते हैं वहां का जीवन आनंदमय होना चाहिए। क्योंकि सब धर्मों ने परस्पर प्रेम भाव रखने की ही शिक्षा दी है।

गीता ने तो स्पष्ट कहा है कि हर एक को अपने-अपने

धर्म पर चलना चाहिए और चलने देना चाहिए। जिसकी जिस पर श्रद्धा है, वही उपासना उसके लिए अनुकूल है।

यही बात कुरान में पाई जाती है। कुरान कहता है, हर एक कौम के लिए भगवान ने रसूल भेजे हैं। जितने रसूल दुनिया में भेजे गये हैं, सबकी जमात एक है। हर मजहब में जितने संत हुए हैं उन सबका हृदय एक है। आपस में जो भेद दिखाई देते हैं, वे अन्य लोगों के पैदा किये हुए हैं, संतों के नहीं।

जैनों ने बताया है कि परिपूर्ण विचार कहीं शब्दों में नहीं आता है। एक-एक पंथ में सत्य की एक दिशा दिखलाई देती है। एक ही दिशा को देखने से पूरा सत्य हाथ में नहीं आता। सब पहलुओं से देखना चाहिए, लेकिन एक पहलू का दूसरे पहलू से विरोध तो हो ही नहीं सकता।

आर्य-समाजी वेदों में श्रद्धा रखते हैं। वेद ने कहा है "एकं संत विप्रा बहुधा वदन्ति"। सत्य एक है, उसकी उपासना करने वाले अलग-अलग नामों से उसे पुकारते हैं। भिन्न-भिन्न जितने धर्म हैं वे सब अलग-अलग उपासनाएं नहीं, तो क्या हैं? इस्लाम एक तरह की उपासना है, ख्रिस्ती धर्म दूसरी तरह की। हिंदूधर्म में तो उपासना के कई भेद हैं। लेकिन फिर भी सत्य एक ही है, इसलिए उन उपासनाओं में विरोध नहीं होना चाहिए ऐसी आज्ञा वेद भगवान की है।

ईसाइयों के धर्मग्रन्थ में यही बात है। ईसा अपने शिष्यों

को कहते हैं "तुम यह न समझो कि तुम्हीं मेरे शिष्य हो और तुम्हारे ही मकान में मैं रहता हूं। दूसरे भी मेरे मकान पड़े हैं"। ईसा ने इस प्रकार अपने शिष्यों को सर्व-धर्म-समभाव समझाया है।

इस तरह किसी धर्म का किसी धर्म से विरोध नहीं है। सबका, किसी से विरोध है तो वह अधर्म से है। अधर्म का विरोध करने में सबको एक होना चाहिए। दुनिया में नास्तिकता फैल रही है। उसका प्रतिकार कौन करेगा? सब धर्म आस्तिक हैं, उन्हें नास्तिकता के खिलाफ लड़ना है। अगर वे आपस में लड़ते रहेंगे तो खुद खतम हो जायंगे और दुनिया में नास्तिकवाद फैल जायगा।

हिंदुस्तान में अनेक उपासनाएं चलती हैं उनकी झलक अजमेर में देखने को मिलती है। इसलिए मैं प्रार्थना करूंगा कि एक दूसरों के धार्मिक उत्सवों में हम शरीक हों और सबको अपने दिल में जगह दें। तभी हिंदुस्तान दृढ़ बनेगा और दुनिया का मार्गदर्शक होगा।

अजमेर
९-५-४८

: १९ :

निर्भय बनो

हिंदुस्तान में अभी जो बातें हुईं उनको आप सब जानते ही

हैं। लेकिन उन्हें भूल जाइए। बुरी बातें हमेशा भूलनी चाहिए। बुरी बातों को ही याद करते रहेंगे तो इन्सान, देखते-देखते हैवान बन जायगा। हमारे पुरखाओं ने हमें सिखाया है, ईश्वर को याद करो, नेक काम करो और बुरी बातें भूल जाओ। हिंदू-मुसलमान पहले जिस तरह मिल-जुल कर रहते थे वैसे ही अब उनको रहना है। यह तो पाक जगह है। सबको निडर होकर यहां आना चाहिए। खुदा से डरनेवाला और किसीसे क्यों डरेगा ? दुनिया में चंद रोज ठहरना होता है। हमारे लिए, जिस दिन यहांसे जाने का तै हुआ है, उसी दिन जाना है। डर रखने से हम अपनी जिंदगी को बढ़ा तो नहीं सकते। डर रखने से इतना ही होता है कि हम खुदा को भूल जाते हैं, इन्सानियत को भूल जाते हैं। डरने वाला मौके पर ऐसे बुरे काम कर जाता है कि उसको ही बाद में ताज्जुब होने लगता है।

हिंदू-मुसलमान सब एक ही मिट्टी के पुतले हैं। मरने के बाद हिंदुओं का दहन होता है और मुसलमानों का दफन होता है। लेकिन आखिर होती है दोनों की एक ही मिट्टी। उस मिट्टी पर से हिंदू कौन थे और मुसलमान कौन थे यह पहचाना नहीं जाएगा। हम मिट्टी से पैदा हुए और मिट्टी ही में मिल जानेवाले हैं। बीच का चंद रोज का जीवन एक आजमाईश है। कुरान ने इसे फितना कहा है। मनुष्य की कसौटी करने के लिए खुदा ने उसको दुनिया में भेजा है। भगवान पैसे वाले को पैसा देकर अजमाता है कि यह अपने पैसे का उपयोग कैसे करता है, गरीबों को मदद पहुंचाता है या नहीं। भगवान

गरीब को गरीब रखकर आजमाता है कि वह हिम्मत रखता है या नहीं ?

जो लोग नेक काम करते हैं उनको अच्छा फल मिलता है। और बुरे काम करनेवाले को बुरा फल मिलता है। यही मन्त्र धर्मग्रंथों का सार है। उसको ध्यान में रख कर निडरता से ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। मैं आप से कहूंगा कि आप ईश्वर की इबादत के लिए बेखौफ यहां आते जाइए। उसकी कृपा से आपको तकलीफ नहीं होनेवाली है।

अजमेर
१०-५-'४८

: २० :

सर्वधर्म-समादर

आज मैंने जो देखा और सीखा, वह आपके सामने रखना चाहता हूं। यहां तारागढ़ पर जो दरगाह है उसे देखने के लिए मैं प्रातःकाल पैदल गया था। रास्ते में पहाड़ पर ही एक चिल्ला है, वह भी देखा। जहां चालीस रोज कुछ तपस्या होती है, उसे चिल्ला कहते हैं। मुसलमान भाइयों ने बड़े प्रेम से मुझे सब दिखाया। मेरे, उनके बीच रहने से, उनके दिल को तसल्ली हुई, यह देखकर मुझे बहुत आनंद हुआ। वहां एक बात और जानी। जिसका जिक्र मैं आज करनेवाला हूं।

दोनों मकान बनवाने में मरहट्टों ने सहायता दी है।

वैसा लेख भी वहां मौजूद है। जब यह जाना तब मुझे अचरज तो नहीं हुआ, आनंद हुआ। आप जानते हैं कि मरहट्टों की उन दिनों मुसलमानों से राजकीय लड़ाई जारी थी, फिर भी उन्होंने मुसलमानों के धर्म-कार्यों में मदद देना उचित समझा और अभिमानपूर्वक वैसा लेख भी लिखवाया। यह अच्छी तालीम रामदास स्वामी ने उन्हें दी थी। शिवाजी रामदास स्वामी के शिष्य थे। शिवाजी ने उन दिनों की जुल्मी सत्ता के विरोध में लड़ाई छेड़ी थी। और आजादी हासिल की थी। उनको रामदास स्वामी की शिक्षा थी कि सब धर्मों का समान आदर करना चाहिए। जिनके साथ लड़ाई होती है उनके भी धर्मकार्यों में मदद पहुंचानी चाहिए। शिवाजी के जीवन में हम यह देखते हैं। जहां मौका मिलता था वे मुसलमानों की मसजिद में जाते थे। रामदास स्वामी भी जाते थे। शिवाजी ने हज के यात्रियों के लिए उत्तम प्रबंध कर दिया था। इस तरह मुसलमानों के धर्म की वे इज्जत करते थे। यह सब मैं इसलिए बता रहा हूं कि उसपर से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

आज हिंदुस्तान में हमारे बीच कोई राजकीय झगड़ा नहीं रहा है। हिंदूमहासभा ने भी यह मान लिया है और उस तरह का प्रस्ताव भी पास किया है। यहां एक हुकूमत कायम हो गई है, जो सब की है। उसे मजबूत बनाना हर एक का फर्ज है। उसके लिए सब को देश में पूरी शांति रखनी चाहिए। किसी भी हालत में कानून को अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए। लेकिन इस बात को मैं छोड़ देता हूं। मुझे कहना यह था कि

राजकीय झगड़ा चालू हो तब भी धर्म के विषय में आदर बना रहना चाहिए। मैं, धर्म को माता की उपमा देता हूं। माता बच्चे को सहज मिलती है। जिसको जो मिली उससे वह पालन-पोषण पाता है। हमें अपनी माता की इज्जत और सेवा करनी चाहिए। जो अपनी माता की इज्जत करता है उसका स्वभाव ही होता है कि वह दूसरों की माताओं की भी इज्जत करता है। जो ऐसा नहीं करता है वह खुदकी माता की भी इज्जत नहीं करेगा।

सब धर्म परमेश्वर की तरफ जाने के रास्ते हैं। कोई पूरब से है तो कोई पश्चिम से है। लेकिन भगवान के पास ही वे पहुंचाते हैं। इसलिए एक दूसरों के धर्म के विषय में पूज्यभाव होना चाहिए। एक दूसरों के धार्मिक उत्सवों में आनंद और भक्ति के साथ शरीक होना चाहिए। एक दूसरों के अच्छे विचारों का अभ्यास करना चाहिए।

अभी हमने फातेहा सुना। वह कुरान का पहला अध्याय है। उसका उपदेश यही है कि भगवान हमें सीधी राह बतावें। टेढ़ी राह न बतावें। हम जानते हैं कि टेढ़ी राहें करोड़ों हो सकती हैं, लेकिन सीधी राह एक ही तरह की हो सकती है। दिशा चाहे जो हो उसका प्रकार एक ही होता है। सीधी राह बतानेवाले मंत्र, चाहे अरबी में हों संस्कृत में हों या तमिल् में हों ईश्वर के पास पहुंचानेवाले हैं। एक लफ्ज में कहा जाय तो सब धर्म सत्य के दर्शन के लिए हैं। सत्य का पूरा दर्शन इस देह में होना मुश्किल है। उसका एक पहलू भी हाथ आ जाय तो काम हो जाता है।

अजमेर में प्राचीन काल से यह उर्स होता है। मैंने सुना है कि दूसरे धर्मवाले सत्-पुरुष यहां आते थे। बाबा नानक इस दरगाह में प्रार्थना करके गये हैं। ऐसा यह स्थान आपके यहां है इसका पूरा लाभ आपको उठाना चाहिए। लाभ यही कि जितने लोग यहां रहते हैं उन सबके दिल एक बनने चाहिए। अजमेर में धर्म के नाम से झगड़ा होने की आवाज कभी भी सुनाई नहीं देनी चाहिए।

अजमेर
१०-५-४८

: २१ :

सर्वधर्म-समभाव की व्याख्या

आप लोग जानते हैं कि मैं यहां उर्स के लिए आया हूं। कल जुम्मे का दिन है। कल दरगाह जाऊंगा और उनके रस्म-रिवाज और उनकी उपासना देखूंगा।

इस तरह एक दूसरों के उत्सवों में भाग लेना मुफीद है, इस बारे में एक दफा मैं बोल चुका हूं। एक भाई ने मुझसे सवाल पूछा कि "दूसरों के धार्मिक उत्सवों में आप जायंगे तो आपको नुकसान नहीं होगा? यह हम समझ सकते हैं, लेकिन दूसरे सर्व साधारण लोग इस तरह करेंगे तो क्या उनकी स्व-धर्म-निष्ठा में कमी नहीं आएगी? अपने धर्म में उनकी निष्ठा डिगेगी नहीं?" यह सोचने लायक सवाल है।

मेरी राय में ऐसा होने का कोई कारण नहीं है। अनुभव भी ऐसा नहीं आया है। मान लो कि मैं अपने मित्र के यहां गया, उनकी बूढ़ी माता के दर्शन हुए, और उनको मैंने आदरपूर्वक प्रणाम किया, तो क्या उससे अपनी माता के प्रति मेरा आदर कम होनेवाला है ? ऐसा तो देखा नहीं जाता है। मातृत्व का आदर करके जब मैं दूसरे की माता को प्रणाम करता हूं तो अपनी माता के प्रति मेरा आदर और भी दृढ़ होता है। वैसा ही यहां भी है। दूसरों के धार्मिक उत्सवों में जब हम शरीक होते हैं, और देखते हैं कि जो ईश्वर-निष्ठा हमारे धर्म ने हमें सिखाई है वही निष्ठा वहां देख पड़ती है—चाहे उसका ढंग दूसरा हो—तो हमारी स्व-धर्म-निष्ठा बढ़नी चाहिए। मेरे एक मित्र हैं, जो बरसों से तुलसी-रामायण बिना चूके नियमित पढ़ा करते थे। उन्होंने कोई दूसरी धार्मिक पुस्तक नहीं पढ़ी थी। बरसों बाद, किसी ने भागवत पढ़ने का उनसे आग्रह किया, और उन्होंने उसे पढ़ा। मैंने उनसे पूछा कि "आपके दिल पर भागवत पढ़ने का क्या असर हुआ ?" उन्होंने जवाब दिया—"भागवत में भी वही भक्ति देखी जिसका वर्णन तुलसीदासजी ने रामायण में किया है। उससे रामायण में मेरी निष्ठा और भी दृढ़ हुई, और मैं अपना पाठ अधिक उत्साह से करने लगा"। अगर भागवत के पढ़ने से तुलसी रामायण के विषय में निष्ठा कम नहीं होती है—यद्यपि एक में कृष्ण-भक्ति का वर्णन है और दूसरी में रामभक्तिका—तो यही न्याय जब हम दूसरे धर्मों के ग्रंथों का अध्ययन करते हैं, और उनके धार्मिक उत्सवों में भाग लेते हैं तब भी लागू होना चाहिए। मेरे धर्म में जो

भक्ति सिखाई है वही इस्लाम में, वही ईसाई-धर्म में वही सिक्ख-धर्म में सिखाई है ऐसा अनुभव आता है; तो अपने धर्म में मेरी निष्ठा बढ़नी चाहिए या घटनी चाहिए ? अनेक गवाह अगर एक ही बात कहते हैं तो उससे बात मजबूत होती है कि कमज़ोर ? लेकिन निष्ठा का सवाल अनुभव का है । पूछनेवाले ने तर्क के आधार पर यह शंका की है । वह खुद जब अनुभव करेगा तब उसकी शंका मिट जायगी और निष्ठा दृढ़ होगी ।

इससे और भी एक लाभ होता है । दूसरे धर्मों का अध्ययन करने से हमारा दिल विशाल बनता है । हमारे धर्म में जैसे जप, उपवास आदि होते हैं वैसे ही उनके धर्म में भी होते हैं, उत्सव के अवसर पर हमारे यहां जिस तरह दान आदि देने का रिवाज है वैसा ही उनमें भी है, हमारे यहां जैसे यात्रा का महत्त्व माना जाता है वैसा ही वे भी मानते हैं, हम एक ईश्वर की भक्ति करते हैं, वे भी एक ही खुदा को मानते हैं, प्रार्थना भी वैसी ही होती है—चाहे दूसरे नाम से और दूसरे ढंग से हो—जब हम यह सब देखते हैं तो सहज ही हमारी बुद्धि व्यापक बनती है । मैंने उन कुछ साधनों का यहां जिक्र किया है जिसको इस्लाम में "रुकने दीन" यानी धर्म के खंभे कहा गया है । आखिर धर्म का कार्य मनुष्य के हृदय को विशाल बनाना ही तो है ? सर्वत्र हरि विराजमान है, धर्म यही सिखाता है । व्यवहार में व्यक्तियों का परिचय हमेशा उनकी उत्तम मनःस्थिति में नहीं होता जब कि धार्मिक उत्सवों में उनका जो परिचय होता है वह उनकी उत्तम हालत में तथा विशुद्ध रूप में होता है । और जब विशुद्ध परिचय होता है तो हृदय

में श्रद्धा बढ़ती है, हृदय विशाल बनता है, और हरि-दर्शन में मदद होती है ।

एक सवाल हो सकता है । दूसरों के धार्मिक उत्सवों में जाकर यदि कोई चीज हम वहां देखें जो हमारे धर्म में न दिखाई देती हो, तो उस धर्म की तुलना में हमारी स्व-धर्मनिष्ठा नहीं डिग जायगी ? मैं कहता हूं—रीति-रिवाजों की तुलना करके अगर दूसरे धर्म में कोई अच्छा रिवाज दिखाई दे जो हमारे धर्म में नहीं है तो वह धर्म सुधार का कारण बन जाना चाहिए । उससे धर्म परिवर्तन या अपने धर्म की निष्ठा कम होने की बात नहीं आती । मान लो कि अपने बगीचे में मैंने अच्छे-अच्छे फल लगाए हैं, लेकिन जब मैं दूसरों का बगीचा देखने गया तो वहां कुछ दूसरे भी अच्छे फल, जो मेरे बगीचे में नहीं हैं मुझे दीखे तो उसका अनुकरण करके अपने बगीचे में भी मैं वैसे फल लगाऊंगा या उसे उखाड़ ही दूंगा ? इससे ध्यान में आयगा कि हम सबको धर्म सुधार का काम करना होगा । तुलना से डरना नहीं होगा । बुद्धि की कसौटी से डरेंगे तो इस जमाने में श्रद्धा टिकनेवाली नहीं है और टिकी भी तो किसी काम की नहीं होगी ।

जब हम सर्व-धर्म-समभाव की बात करते हैं तो दूसरे धर्मों का परिचय भी उसके लिए जरूरी है । सर्व-धर्म-समभाव में मैं चार चीजें आवश्यक मानता हूं । पहली चीज है स्व-धर्म-निष्ठा । दूसरी अन्य धर्म का आदर । तीसरी सर्व-धर्म-सुधार, जिसके बगैर मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता । और चौथी बात, जो इन तीनों में से सहज ही निकलती

है—अधर्म का विरोध है। ये चारों चीजें एकत्र होती हैं तब सर्व-धर्म-समभाव सिद्ध होता है।

हमारे पूर्वजों ने धर्म-सुधार का कार्य निरंतर किया है। संस्कृत-साहित्य में जो उदारता और सहनशीलता मैंने देखी वैसी शायद ही कहीं देखने को मिले। सांख्य और योग, वेदांत और मीमांसा, सभी एक जगह फले, फूले और खिले। दर्शनों के बारे में वाद और चर्चाएं होती रहीं और सारे दर्शन विकसित हुए। जिस धर्म में छः छः दर्शन हैं वे दूसरे धर्मों के परिचय से क्यों डरें? दूसरे धर्मों का अभ्यास करेंगे, उनमें जो अच्छी चीज होगी वह हम लेंगे, हमारे धर्म में जो अच्छी चीज होगी वह वे लेंगे, और इस तरह प्रेमपूर्वक सब की उपासनाओं का अभ्यास करेंगे। रामकृष्ण परमहंस ने सब धर्मों की उपासनाओं का अभ्यास किया, तो उनको सर्व-धर्म-समन्वय का अनुभव हुआ। और स्वधर्म में उनकी निष्ठा भी कम नहीं हुई, बल्कि बढ़ी। वैसे हमें भी अनुभव होगा और हमारी भी निष्ठा बढ़ेगी।

अजमेर
१३-५-४८

: २२ :

क्षमा-प्रार्थना

आज आपके बीच यहां आया हूं तो मुझे निहायत

खुशी हुई है। महात्माजी यहां आनेवाले थे। उन्होंने वैसा वादा किया था। लेकिन भगवान की मर्जी दूसरी थी! आप जानते ही हैं कि दुनिया में वही होता है जो अल्लाह चाहता है। इन्सान की मृत्यु कब कहां और कैसे होगी यह अल्लाह ही जानता है, इस तरह के जुमले कुरान में मौजूद हैं। मैं यहां आया हूं तो महात्माजी के वादे को पूरा करने नहीं आया हूं। वह जो कर सकते थे वह मैं क्या कर सकता हूं! जो ताकत भगवान ने उनको दी थी वह मुझे नसीब नहीं है। मैं तो आप से हमदर्दी जताने के लिए आया हूं। अभी आपको सुनाया गया कि मैं गांधीजी का मिशन चलाने के लिए आया हूं। चाहता तो जरूर यही हूं, लेकिन भगवान जैसा चाहेगा वैसा होगा। मैं तो अपने को उसका अदना-सा खिदमतगार मानता हूं। यह भी एक भाषा ही है। दरअसल अल्लाह को खिदमत की जरूरत ही कहां है! वह तो 'गनी' बे परवाह है। उसकी खिदमत के नाम से हम अपना ही भला करते हैं। इन्सान की जबान में अल्लाह का बयान करने की ताकत ही कहां है? फिर भी वह उसकी कोशिश करता है और अपने दिल को तसल्ली देता है। कुरान में कहा है कि सारा दरिया स्याही बन जाय और सारे दरख्त कलम बन जायं तो भी खुदा का पूरा बयान नहीं हो सकता। यही बात संस्कृत के एक श्लोक में कही है। फिर इन्सान बयान करने की कोशिश करता है, तो इतना ही कह पाता है कि "अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर"—तू सबसे बड़ा है। यहां उसकी जबान रुक जाती है।

हर इन्सान को अल्लाह पर ईमान रखना चाहिए।

लेकिन ईमान रखने के मानी क्या है ? कोई भी कहेगा कि मैं ईमान रखता हूं । लेकिन कहना एक चीज है और करना दूसरी चीज है । हम जो कहते हैं उसका सबूत क्या है ? सबूत यही है कि हमारी करनी अच्छी होनी चाहिए । हमारे काम नेक होने चाहिए । गरीबों की सेवा हमें करनी चाहिए और खुदा को जताना चाहिए । ऐसा करते हैं तो हम अल्लाह पर ईमान रखते हैं, ऐसा कहा जायगा । वरना हमारे कहने की कोई कीमत नहीं है । कुरान में कहा ही है "लीम तकूलून मा ला तफ् अल्न ?" क्यों ऐसी चीज कहते हो जो करते नहीं हो ! जहां-जहां ईमान की बात कुरान में आई है, वहां वहां नेक काम करने की बात उसके साथ जोड़ दी गई है । आगे कहा है कि अगर बुरा काम करोगे तो बुरा फल पाओगे, और अच्छा काम करोगे तो अच्छा फल पाओगे । इसका अनुमान इस जिंदगी में न आया तो बाद में आयगा, लेकिन आयगा जरूर । यह जिंदगी एक कसौटी है । अल्लाह हमें उसपर कस लेता है । जो थोड़ा समय इन्सान को इस जिंदगी में मिला है उसमें नेक काम करके हम कसौटी पर खरे उतरते हैं तो भगवान की सच्ची भक्ति करते हैं ।

हमने हिंदुस्तान में इन दिनों बहुत बुरे काम किये हैं । हिंदू, मुसलमान, सिक्ख सब ने किये हैं । तो किसीसे क्या कहना ? खुदा से ही सच्चे दिल से कहें कि "तू ही हमारा मददगार है, हमें अक्ल देनेवाला है, हमने जो किया उसके लिए तू हमें मुआफी दे" । अगर वह हमें कसौटी पर कसना चाहता है तो जरूर कस सकता है और हमारी करनी के लिए सजा भी दे सकता है ।

लेकिन उसकी कसौटी पर खरे उतरनेवाले कौन हैं? आखिर हमारा आधार यही है कि हम उससे क्षमा-याचना करें। इसलिए मैं हिंदू, मुसलमान, सिक्ख और सभी हिंदुस्तानियों की तरफ से आज यहां भगवान से प्रार्थना करता हूं कि वह हमें क्षमा करें।

मेरे भाइयो! मैं अधिक बोलने की कोशिश करूंगा तो भी नहीं बोल सकूंगा। यह देश हम सबका है। हम सब यहां-की मिट्टी से पैदा हुए हैं और यहीं की मिट्टी में मिल जाने-वाले हैं। इसलिए आपस में मुहब्बत से रहिए। दिल में एक दूसरे के लिए जगह दीजिए। भाई-भाई की तरह रहिए। मैं तो ऐसे दिनों की राह देखता हूं कि हिंदुस्तान के सब धर्मों के लोग स्त्री और पुरुष एक जगह बैठेंगे और परमेश्वर का नाम लेंगे। पुरुषों के साथ स्त्रियां भी बैठ कर परमेश्वर का स्मरण करें ऐसा यहां रिवाज नहीं है। लेकिन हमेशा पुराने रिवाजों में ही नहीं रहना है। हमें तो आगे बढ़ना चाहिए। और ऐसा जमाना लाना है कि जब सब-के-सब भगवान के सामने खड़े होकर अपने भेदों को भूल जायंगे। भगवान के सामने खड़े रह कर भी अगर हम दिल में भेद रखते हैं, तो हम सच्चे अर्थ में भगवान के सामने खड़े ही नहीं हुए। सूरज के सामने सितारा खड़ा हो जाय तो क्या वह अलग चमक सकता है? आखिर हमें भगवान में ही समा जाना है। दुनिया में वही एक है, और बाकी कुछ नहीं है।

अजमेर
१४-५-४८

: २३ :

इस्लाम का उपकार

हिंदुस्तान में हिंदू और मुसलमान एक हजार साल से रहते हैं। अगर अभीतक वे एक दूसरे की खूबियां नहीं जानते हैं तो दुःख की बात है। कबीर नानक आदि संतों ने इस दिशा में प्रयत्न भी किये हैं।

मुसलमानों की एक मुख्य बात यह है कि वे एक ईश्वर को मानते हैं। इसे "तौहीद" कहते हैं। तौहीद यानी एकता। यह ऐसी बात है जो दिमाग को साफ रखती है। हिंदूधर्म भी परमात्मा की एकता को मानता है। लेकिन उपासना के लिए भक्त भगवान को अलग-अलग नाम से पुकारते हैं। भगवान के अनंत गुण हैं, जिस गुण की कमी भक्त अपने में देखता है उस गुणवाले परमात्मा का वह नाम लेता है, उसकी उपासना करता है। मेरे हृदय में दया की कमी मैं देखता हूं तो मुझे दयामय भगवान का स्मरण करना चाहिए, और सत्य की कमी मालूम होती है तो सत्य-स्वरूप परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। इस तरह उपासनाएं अनेक हो जाती हैं। अलग-अलग गुणों पर से परमात्मा के अलग-अलग नाम पड़े हैं। लेकिन कभी कभी ऐसा होता है कि ऐसे अलग नामों के कारण गलतफहमी होती है। कुरान में भी इसका जिक्र आया है। महम्मद पैगंबर से पूछा गया है कि कभी अल्लाह कहते हो और कभी रहमान कहते हो, तो यह क्या

बात है ? क्या ये दो अलग-अलग देवता हैं ? तो जवाब देना पड़ा है कि अल्लाह और रहमान एक ही है। अभी हमने भजन में सुना "रहम करे रहमान"—जो रहम करता है उसका नाम रहमान है। ऐसे दूसरे भी नाम हैं। हिंदुओं ने उन नामों के अनुसार भगवान की अलग-अलग मूर्तियां बना दी हैं। मजदूरों के लिए जो अखबार होते हैं उनमें मोटे अक्षरों के अलावा चित्रों में खबरें छापी जाती हैं। वैसे ही ये मूर्तियां यानी भगवान के गुणों के चित्र हैं। उन चित्रों पर से उपासना करने का तरीका हिंदुओं ने निकाला। चित्रों से जैसे सहूलियत होती है, वैसे गलत खयाल भी आ सकता है। इसलिए चित्रों का मोह छोड़कर इस्लाम ने साफ तौर पर एक ही चीज को दुनिया के सामने रक्खा है। यह इस्लाम का उपकार है। उसकी हमें कदर करनी चाहिए। और सबका अंतर्यामी परमात्मा एक ही है यह विश्वास दृढ़ करना चाहिए।

अजमेर
१४-५-४८

: २४ :

महान् राष्ट्र की जिम्मेदारी

आप लोगों के बीच मैं सात दिन ठहरा और आज यहां से जा रहा हूं। इतने दिन यहां रहा तो आप के घर का ही बन गया हूं। यहां के सब लोगों ने मुझ पर बहुत प्रेम बरसाया।

कल मैं दरगाह में गया था; वहां की नमाज में हिस्सा लिया और दो शब्द कहे। सब लोगों ने बहुत प्रेम से सुना और अंत में हाथ में हाथ मिलाने के लिए लोगों ने जो चेष्टा की वह देखकर जी भर आया। दरगाह में ही शाम को हमारी प्रार्थना हुई, जिसमें गीता के श्लोक बोले गए। यह सब बहुत अच्छा है। यहांका वातावरण इन दिनों में बदल गया है। भगवान की असीम कृपा है और बापू की शहादत काम कर रही है। यह जो हवा अब यहां पैदा हुई है उसको कायम रखना आप सब का फर्ज है। अजमेर प्राचीन काल से अनेक संस्कारों की संयोग-भूमि रहा है। आप देखते हैं कि यहां हिन्दू और मुसलमान जैन और आर्यसमाजी चारों के केन्द्र हैं। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यहां ब्रह्मदेव पुष्कर-क्षेत्र में विराजमान हैं, जो चारों मुख से सबका दर्शन लेते हैं और सबको दर्शन देते हैं। एक साल पहले यहां दुर्घटना हुई, लेकिन वह अब इतिहास में शामिल हो गई। अब तो केवल प्रेम का ही संदेश यहांसे चारों ओर जाना चाहिए।

हमारा हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा देश है। दुनिया भर के अनेक मानव-समाज यहां दाखिल हुए हैं। और यह राष्ट्र समूह-तुल्य देश बन गया है। ऐसे देश पर एक महान् जिम्मेदारी आती है। गांधीजी ने हमें अहिंसा का संदेश दिया। वह तो हिन्दुस्तान का संदेश है। गांधीजी केवल निमित्त बने। जिस देश में अनेक जमातें रहती हैं और जो देश खंडप्राय है, उसमें अहिंसा से ही आजादी और मानव-समाज टिक सकता है। मैं ऐसा माननेवाला हूं कि जीवन के हर हिस्से में और हर हालत

में अहिंसा का ही उपयोग करना चाहिए। लेकिन वह बात अभी आपके सामने मैं नहीं रख रहा हूं। एक मर्यादित क्षेत्र में आप से मैं अहिंसा की बात कर रहा हूं। सोचिए कि जहां इतने मुख्तलिफ समाज रहते हैं उस देश को हम किस तरह आजाद रख सकते हैं। उपाय उसका यही होगा कि यहांकी जो हुकूमत हो उसके हाथ में हम दंड-शक्ति दें और खुद अहिंसक होकर रहें। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे और आपस-आपस में हिंसा का प्रयोग करते रहेंगे तो एक सर्वतोन्मुखी सत्ता यहां नहीं टिकेगी। इसलिए व्यक्तियों को अहिंसा की मर्यादा में ही रहना होगा।

आगे चलकर सरकार के हाथ में दी हुई दंडशक्ति को भी हमें बेकार बनाना है। देश के आंतरिक कारोबार में उस शक्ति के उपयोग का मौका ही न आवे तो सरकार धीरे-धीरे लोगों में लीन हो जायगी और जिसको आध्यात्मिक अराजक कहते हैं—जो मानव का ध्येय है—आ जायगा। उसके लिए बीच की चीज है सरकार के हाथ में दंडशक्ति देकर आपस के व्यवहार में उसका उपयोग न करना। यही हिंसा में से अहिंसा में जाने का रास्ता है। इस रास्ते से हिंदुस्तान जाता है तो दुनिया का भी मसला हल हो जाता है, क्योंकि हिंदुस्तान एक छोटी दुनिया ही है। उसका उदाहरण दुनिया को अनुकरणीय हो सकता है। हिंदू लोग ध्यान के लिए भगवान की मूर्ति बनाते हैं तो उसके हाथ में शस्त्र रखते हैं। इसका अर्थ है कि भक्त अपने हाथ में शस्त्र नहीं रखता है। शस्त्र रखने का अधिकार भगवान को ही है। इस अवस्था तक

हम पहुंचते हैं तो हमारा बेड़ा पार है। लेकिन अगर वहां तक नहीं जा सकते तो कम-से-कम सरकार के हाथ में शस्त्र सौंप कर हम अहिंसा के उपासक बनें। ऐसा होगा तो देश में शांति और एकता की शक्ति रहेगी। जिस से बाहरी आक्रमण का संदेह मिट जाएगा। फिर सेना को कोई काम नहीं रहेगा और खेती का काम उसे दिया जाएगा। और लश्कर के अधिकारी भी खेती में लग जाएंगे। यह सब आदर्श समाज की रचना है, जो हमें करनी है।

यह ऐसा ध्येय है जिस से हिंदुस्तान के तरुणों के हृदय स्फूर्ति से भर जाने चाहिए। उनके ऊपर भारी जिम्मेदारी है। हिंदुस्तान ने अहिंसा के जरिए आजादी हासिल की है। आजादी की लड़ाइयां तो दूसरे देशों ने भी लड़ीं लेकिन अहिंसा का तरीका किसी ने अख्तियार नहीं किया था। इस शस्त्र का विकास अब हिंदुस्तान कैसे करता है इस तरफ दुनिया की नजर लगी हुई है। हमारे नौजवानों को समझना चाहिए कि पश्चिम के लोगों से हमें समाज-शास्त्र नहीं सीखना है। समाज-शास्त्र में पश्चिम के देश बच्चे हैं। हिंदुस्तान अनुभवी और पुराण-पुरुष है। उसने अपना एक व्यापक समाज-शास्त्र रचा है। उसे परिपूर्ण बनाकर हमें दुनिया को रास्ता बताना है। जो पागलपन पश्चिम में हो रहा है उसका अनुकरण हमें नहीं करना चाहिए। उसका अनुकरण हम करेंगे तो पाश्चात्यों के हम गुलाम बनेंगे और अपनी असलियत खोयेंगे। इसलिए हमारे तरुणों को अहिंसा की ताकत विकसित करनी चाहिए। हिंदुस्तान की सभ्यता का अभ्यास करना चाहिए। वेद से लेकर आज

तक जितने विचार-प्रवाह यहां हुए वे सब अहिंसा की ओर हमें ले जा रहे हैं, यह समझना चाहिए। हिंदुस्तान को जितनी महान् विरासत मिली है उतनी किसी दूसरे देश को नहीं मिली है। उस विरासत को कायम रखने और बढ़ाने की खास जिम्मेवारी हमारे ऊपर है।

अजमेर
१५-५-४८

: २५ :

अपरिग्रह की सादी युक्ति

मैं मानता हूं कि मनुष्य के सारे प्रयत्नों से वह चीज नहीं होती जो प्रार्थना से होती है। मनुष्य के प्रयत्नों को मैं बिजली के पंखे की उपमा दूंगा, और प्रार्थना की शक्ति को उपमा दूंगा बाहर की खुली हवा की—जो कि समुद्र या पहाड़ की तरफ से बहती हुई आती है। बिजली के पंखे से जो हवा पैदा होती है वह भी, सृष्टि में जो खुली हवा फैली है, उसी का छोटा हिस्सा है। वैसे ही मनुष्य का प्रयत्न भी परमात्मा की शक्ति का ही छोटा हिस्सा है। बिजली के पंखे से इतना ही होता है कि कमरे की ही हवा बहने लगती है, जिससे कुछ ठंडक मालूम होती है। लेकिन साथ-साथ कमरे के कोने में बैठे हुए जंतु भी शायद उड़ कर मनुष्य के फेफड़े में जाते होंगे। उपमा को छोड़ दीजिए। मेरे कहने का मतलब यह था कि

मनुष्य के प्रयत्न से कुछ अच्छा काम होता है तो सीमित मात्रा में और कुछ बुरा काम भी उससे होता ही है। प्रार्थना या भगवान की भक्ति से तो शुभ ही होता है, और वह भी असीम। मनुष्य के अंतर में शुभ और अशुभ दोनों तरह की वृत्तियां हैं। लेकिन अंतरतर में तो शुभ ही भरा है। प्रार्थना से उस अंतरतर में प्रवेश होता है।

लेकिन आज तो मैं दूसरी ही बात कहनेवाला था। मैं जहां-जहां गया वहां जो देखा उससे एक वस्तु साफ दिखाई दी कि हिंदुस्तान के गरीब लोगों की हालत बिगड़ती ही जा रही है। स्वराज मिलने के बावजूद उनको राहत नहीं मिल रही है। अगर हम देश में शांति चाहते हैं तो उनके लिए फौरन हमें कुछ करना चाहिए। वर्धा में रचनात्मक काम करनेवालों की सभा में मैंने कहा था कि यदि हम अहिंसक समाज-रचना करना चाहते हैं तो अपरिग्रह का खयाल रखना चाहिए यानी जिनके पास संपत्ति है उन्हें सच्चे अर्थ में उसके ट्रस्टी बनना चाहिए, तभी अहिंसा का दर्शन होगा। नहीं तो उत्तरोत्तर अशांति बढ़ती जायगी। उसके आसार भी मैं देख रहा हूं। वर्धा की सभा में जब अपरिग्रह की बात मैंने रखी तब यह सवाल उठा था कि जरूरत से ज्यादा संपत्ति अपने पास नहीं रखनी चाहिए इस बात को तो हम मानते हैं, लेकिन किसकी जरूरत कितनी है यह कौन तय करे? अपरिग्रह एक विचार है। वह विचार अगर मनुष्य के हृदय में प्रवेश करता है तो वही मनुष्य को सुझाएगा कि उसके लिए कितने संग्रह की आवश्यकता है। वह अपने लिए जो

भी तय करेगा उससे मेरा समाधान हो जायगा, बशर्ते कि वह अपरिग्रह के विचार को सच्चे दिल से मानता है।

इस विषय में एक सादी सूचना मैं करूंगा। जिसके दो बच्चे हैं वह अपने तीन बच्चे हैं ऐसा समझे। यह तीसरा बच्चा यानी गरीब जनता। वह बच्चा दुनिया में पड़ा है। उसके लिए अपनी संपत्ति का, बुद्धि का, समय का उतना हिस्सा दें तो सारा सवाल हल हो जाता है। घर में अगर नया बच्चा पैदा हुआ तो कोई शिकायत तो नहीं करते। बल्कि अपने जीवन को उस तरह ढाल लेते हैं। वैसे ही गरीब जनता के लिए हम करेंगे तो अपरिग्रह का अच्छा आरंभ होगा और उसकी व्याख्या करने की जरूरत नहीं रहेगी। हिंदुस्तान को उत्तम दरिद्रता देकर भगवान हमारी कसौटी कर रहा है। गांधी जी के चले जाने के बाद तो अब हमारी और भी कसौटी होनेवाली है। आप जो चंद लोग यहां इकट्ठे हुए हैं उनके भी दिल में अगर अपरिग्रह की यह सादी युक्ति जंच जाती है तो उसका कभी-न-कभी दूसरों को स्पर्श हुए वगैर नहीं रहेगा, और ईश्वर की कृपा से कसौटी में हम पार उतरेंगे।

राजघाट, दिल्ली
२१-५-४८

: २६ :

व्यापक आत्मज्ञान

आप लोगों ने सुना ही है कि किंग्स्वे कैंप में आग लग गई थी। लोग वहां मदद के लिए पहुंच गए हैं, और कुछ सेवा कर रहे हैं वैसे तो यह अच्छा है। लेकिन सहज ही मन में सवाल उठता है कि क्या यही मदद पहले नहीं पहुंचाई जा सकती थी? लेकिन हिंदी समाज का आत्मज्ञान बहुत संकुचित हो गया है। कुछ दया-भाव बचा है। और जब कभी भारी मुसीबत आ पड़ती है तो वह जागृत हो उठता है। कुछ मदद पहुंचाने के बाद वह दया का आवेग शांत हो जाता है, और हम फिर से अपने देह के कामों में गिरफ्तार हो जाते हैं। अगर व्यापक आत्मज्ञान होता तो महान् आपत्ति की राह देखे बिना हम पहले ही सेवा में लग जाते। माता अपने बच्चे पर भारी आफत आने पर ही मदद के लिए नहीं दौड़ती है। वह तो निरंतर ही उसकी सेवा में कुछ-न-कुछ त्याग करती रहती है। क्योंकि वह पहचानती है कि बच्चा मेरा है, मेरा ही स्वरूप है। इसी को आत्मज्ञान कहते हैं। हम इस देह में ही बद्ध नहीं हैं, हमारा स्वरूप व्यापक है, इस चीज का ज्ञान होना ही आत्मा का ज्ञान है। माता का आत्मव्याप्ति का भान उसके बच्चों तक ही सीमित रहता है, आगे नहीं बढ़ता। इसलिए एक दृष्टांत के तौर पर ही हम उसको ले सकते हैं, यद्यपि वह आत्मज्ञान का उत्तम दृष्टांत नहीं है।

व्यापक आत्मज्ञान का परिणाम तो यह होगा कि इर्द गिर्द की सृष्टि और समाज की सेवा में जीवन की चरितार्थता मालूम होगी, उसके बिना जीवन निरर्थक लगेगा।

हिंदुस्तान में यद्यपि तत्त्वज्ञान की चर्चा बहुत हुआ करती है, फिर भी आत्मज्ञान की अनुभूति नहीं है। अपने कुटुंब से आगे हमारा आत्मज्ञान बढ़ता ही नहीं। आध्यात्मिक उन्नति की कल्पना में भी संकुचितता और स्वार्थ-बुद्धि आ गई है। मैं अक्सर लोगों को यह पूछते हुए सुनता हूं "क्या प्रार्थना एकांत में करना बेहतर नहीं है?" फिर उन्हें समझाना पड़ता है कि वह एकांत में भी करनी चाहिए। लेकिन उतने से उसका कार्य पूरा नहीं होता। हम समाज में रहते हैं तो हमारी साधना में सामुदायिकता होनी चाहिए। तभी आत्मा की व्यापकता का अनुभव हो सकता है। कोई यह नहीं पूछता "खाने के लिए मित्र-मंडलियों को क्यों बुलाया जाय?" लेकिन प्रार्थना के लिए यह सवाल उठता है। मतलब में आत्मिक उन्नति का योग्य खयाल हम लोगों को नहीं है। हिंदूधर्म में गायत्री-मंत्र मशहूर है। वह ध्यान का और प्रार्थना का अप्रतिम और सर्वोपरि मंत्र माना जाता है। वह एकांत में ध्यान करने का मंत्र है, उसके बारे में ऐसा खयाल है। लेकिन उसमें भी उपासक अपने को समुदाय का हिस्सा मान रहा है। "भर्गो देवस्य धीमहि" इसमें बहुवचन का प्रयोग है। लेकिन एकांगी बुद्धि होने के कारण वह ध्यान में नहीं आया। हमारे सद्गुण भी सीमित हो गए हैं। घर को साफ करेंगे लेकिन घर के बाहर कचरा फेंक देने में संकोच

कल्पना का स्पष्ट चित्र दिया है। और उसकी प्राप्ति के साधन भी बताए हैं। पुस्तक के आखिर में उन्होंने लिखा है "भगवान साक्षी है, इसी स्वराज की प्राप्ति के लिए मेरी जिंदगी समर्पण है।" यह एक अद्वितीय बात है कि एक मनुष्य ने स्वराज के ध्येय को भी स्पष्ट देखा, उसके साधन का भी निश्चय किया और चालीस साल तक उसी रास्ते से हिंदुस्तान को वह ले गया। आखिर किसी तरह का एक स्वराज्य हमने पाया।

जो साधन उन्होंने तय किया था उसका नाम 'सत्याग्रह' रखा गया। सत्याग्रह यानी केवल सविनय कानून भंग नहीं। अपने जीवन में निरंतर सत्य का आग्रह रखना 'सत्याग्रह' कहलाता है। और सत्य का आग्रह अहिंसा द्वारा ही रखा जा सकता है, इसलिए अहिंसा की बात भी उसमें आ गई। इस तरह साधन का निश्चय करके दक्षिण अफ्रिका में पहले उन्होंने उस साधन को आजमाया। वहां कामयाब होकर वे हिंदुस्तान आए और पूर्ण श्रद्धा से यह नया साधन हिंदुस्तान के लोगों के सामने उन्होंने रखा।

इस साधन पर उनकी कितनी श्रद्धा थी। कहते थे कि इस साधन पर अमल करने की ही देर है, स्वराज्य में देर नहीं है। एक मरतबा तो जाहिर भी कर दिया कि जो कार्य-क्रम तय हुआ है उसका पूरी तरह से अगर देश अमल करेगा तो एक साल के अंदर स्वराज्य मिल सकता है। और वह आंदोलन साल भर उन्होंने चलाया। मुझे याद है कि साल पूरा होने में १८ दिन बाकी थे। हम उस समय साबरमती

आश्रम में थे। आश्रम में कोई बोल उठा कि "बापूजी, वर्ष समाप्त होने में केवल चंद दिन बाकी हैं, और स्वराज्य के तो कोई लक्षण नहीं दीखते।" तो उन्होंने कहा देखो! श्रद्धा मत छोड़ो। १८ दिन में महाभारत की पूरी लड़ाई लड़ी गई थी, अब भी अगर इस कार्यक्रम को पूरा करेंगे तो १८ दिन में भी स्वराज्य हमारे हाथ में आ सकता है।"

वर्ष पूरा हो गया और स्वराज्य हाथ में नहीं आया। क्योंकि हमने उस कार्यक्रम को पूरा नहीं किया था। लेकिन गांधी जी यही कहते रहे कि वही एकमात्र मार्ग है। उसीसे स्वराज्य आनेवाला है। उस श्रद्धा का थोड़ा अंश आखिर हमें छू गया, और स्वराज्य का दर्शन हमने किया। लेकिन बापू जी को उस स्वराज्य से समाधान नहीं हुआ। वे अत्यंत दुःखी रहे। मैजिनी का भी ऐसा ही हुआ। इटली ने जो स्वराज्य प्राप्त किया उसका रूप देख कर वह व्यथित हो गया था। कहता था कि यह स्वराज्य मेरा नहीं है। यही गांधी-जी ने कहा। क्योंकि किसी भी तरह के देशी राज का अर्थ स्वराज्य नहीं है। स्वराज्य, यानी 'स्व' का राज्य, यानी हर एक का राज्य। यह मेरा राज है ऐसा हर एक को लगना चाहिए, तब वह स्वराज्य होता है। इसीको गांधी जी 'राम-राज्य' भी कहते थे। रामराज्य का वर्णन तुलसीदास जी ने इस तरह किया है—

"बैर न कर काहू सन कोई।
राम-प्रताप विषमता खोई॥"

बैर का अभाव और विषमता न होना ये दो रामराज्य

के लक्षण हैं। यही व्याख्या गांधी जी ने भी की थी। लेकिन उन्होंने देखा कि जहां स्वराज्य का दर्शन हुआ, बैर का शमन होना तो दूर रहा लेकिन बैर की आग इस तरह भड़क उठी कि शायद ही उसकी कोई मिसाल हो। यह देख कर स्वाभाविक ही वह दुःखी रहते थे।

अब हमारा यह कर्तव्य है कि जिस चीज का पालन गांधी-जी के जीते हमने नहीं किया वह अब हम करें। स्वराज्य के वे दोनों लक्षण हमें पूर्णतया सिद्ध कर देने चाहिए। हिंदुस्तान में इतने विविध समाज रहते हैं तो वे मित्र-भाव का सबक सीखने के लिए हैं ऐसा हम समझें। अपनी उदार संस्कृति का यह अर्थ अगर हम लेंगे तो बैर-भाव भी मिटेगा और विषमता भी खतम हो जायगी।

अपनी आज की विषमता का चित्र यहीं हम देख सकते हैं। एक तरफ उन शरणार्थियों का जीवन और एक तरफ हमारा जीवन। कहां उनके वे तंबू और कहां हमारे राज-प्रासाद। इस राजधानी में नजदीक ही दोनों चित्र हैं। प्रभु रामचंद्रजी का वर्णन तुलसीदासजी ने किया—

"प्रभु तरु-तर कपि डार पर, ते किये आपु समान"

प्रभु रामचंद्र पेड़ के नीचे बैठते थे, और जो उनके सेवक थे—बेवकूफ बानर—वे पेड़ के ऊपर बैठते थे। ऐसे सेवकों से प्रभु ने काम लिया और अपने समान सबको बनाया, यानी सबको अपना दर्जा दिया। वैसे हमारे ये भी जो सर्वोच्च समर्थ हैं उसे सर्वोत्तम सेवक होना चाहिए। तब हमें सच्चे स्वराज्य का दर्शन होगा।

लेकिन अभी उस दर्शन से हम कितने दूर हैं। यहीं देखो न, हजारों हरिजन उस पंजाब से इधर आ रहे हैं। वे चाहते हैं कि यहां उन्हें जमीन दी जाय। लेकिन उनको कहा जाता है कि "आप जहां थे वहां तो आपके पास जमीन नहीं थी, वहां आप खेत पर मजदूरी ही करते थे, तो फिर आपका खेती पर क्या हक? वहां जिनके खेती थी उन्हींको, और उसी अनुपात से यहां खेती मिलेगी।" मतलब नई समाज-रचना करते समय भी हम वही पुरानी विषमता का चित्र गणित के हिसाब से कायम रखना चाहते हैं।

इसमें परिवर्तन करने के लिए हमें अपने जीवन से ही आरंभ करना होगा। जो जहां खड़ा है वहांसे उसे नीचे उतरना होगा। जब मैं ऐसी बात करता हूं तो हमारे कुछ मित्र कहते हैं कि हमें तो नीचेवाले को ऊपर उठाना है, हमें क्यों नीचे उतरने को कहते हो? लेकिन मेरी अर्ज है कि नीचे वालों को उठाने के लिए ही आप नीचे उतर आइए। माता बच्चे को उठाने के लिए नीचे झुकती है, वैसे ही हमें नीचे झुकना चाहिए। और नीचेवालों को ऊपर उठाना चाहिए। तभी विषमता मिटेगी, और तभी सच्चा स्वराज्य आयगा।

यह हमारा आदर्श है। और बापू का स्मरण यानी उसीका स्मरण है। बापू की स्मृति से स्फूर्ति लेकर उसीके लिए हमें प्रयत्न करना है। वह करेंगे तो बापू की स्मृति को हम जिंदा रखेंगे।

राजघाट, दिल्ली
३०-५-४८

: २८ :

ध्यान की वेला

डेढ़ महीना पहले मैं यहां आ चुका हूं। अब दुबारा यहां आने का मौका आया। बिहार को एक पुण्यभूमि की तौरपर हम सब याद करते आए हैं। वैसे तो सारा हिंदुस्तान ही एक विशाल पुण्यभूमि है, जहां के कोने-कोने में अनादि काल से सत्पुरुषों द्वारा पवित्र संस्कारों का प्रचार होता रहा है। कई राज्य यहां आए और गए, लेकिन शुभ संस्कारों का राज्य यहां हमेशा रहा। दूध की उत्तमता जैसे उसमें मक्खन का परिमाण कितना है, इससे आंकी जाती है वैसे ही समाज की योग्यता उसमें कितने सत्पुरुष पैदा हुए इससे अनुमान की जाती है। सत्पुरुष आसमान से नहीं उतरते। जिस समाज में वे पैदा होते हैं उस समाज का सारा पुण्य उनके रूप में प्रगट होता है। समाज के वे मक्खन होते हैं। दूसरी भाषा में कहें तो वे समाज-पुरुष होते हैं। इस भूमि की यह विशेषता रही है कि हरेक जमाने में—गिरी हुई हालत में भी—सत्पुरुषों की परम्परा यहां अविच्छिन्न रही है। ऐसे ही एक पुरुष गांधीजी हो गए। हमारा देश अंग्रेजों के कब्जे में चला गया था। उसके उद्योगधंधे खत्म कर दिए थे। उसको पूरी तरह निःशस्त्र कर दिया गया था। इतना ही नहीं, बल्कि पश्चिम की संस्कृति से लोग प्रभावित होते जा रहे थे। ऐसी हालत में गांधी जी आए और उन्होंने हिंदुस्तान को अहिंसा का मंत्र दिया। यह कोई नया

मंत्र नहीं था। हिंदुस्तान की संस्कृति का ही यह पैगाम था।

इतने बड़े विशाल मुल्क को हमने एक राष्ट्र माना था, यही हमारी अहिंसा का एक लक्षण है। आधुनिक भाषा में कहा जाय तो राष्ट्रीय-वाद से हिंदुस्तान कब का परे हो चुका था। हिंदुस्तान में आंतरराष्ट्रीय-वाद चलता था। रामेश्वर के मनुष्य को समुद्र का पानी काशी विश्वेश्वर के मस्तक पर चढ़ाने की प्रेरणा होती थी और काशी के मनुष्य को गंगाजी का पानी रामेश्वर की मूर्ति पर डालने की उत्सुकता रहती थी। और वह भी उस जमाने में जब कि आवागमन के आज के जैसे साधन सुलभ नहीं थे। यह एक सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा का महान् प्रयोग था। अनेकों को जो एक रखती है, भेदों में से अभेद को ढूंढती है, वही अहिंसा है। और जो फूट डालती है, भेद बढ़ाती है, वही हिंसा है। हिंदुस्तान की संस्कृति का साररूप अहिंसा-शस्त्र गांधीजी ने हिंदुस्तान को दिया। और हिंदुस्तान गुलामी से छूट गया। उन्होंने संदेश दिया कि अहिंसा का पालन करके मिल-जुल कर रहोगे तो टिकोगे, इतना ही नहीं बल्कि दुनिया के गुरु बन जाओगे। दुनिया आपकी तरफ आशा से देख रही है। लेकिन उन्हींके एक पुत्र ने उनका अंत कर दिया। और वह भी तब, जब कि उनकी अत्यंत आवश्यकता थी। इसके आगे अब हिंदुस्तान से बाहर के क्षेत्र में उनका कार्य शुरू होने वाला था। वह कार्य इतना महान् था कि शायद उनके एक शरीर द्वारा वह पूरा नहीं हो पाता। इसलिए भगवान ने चाहा कि उनके विचार को एक शरीर में से मुक्त करके लोगों के असंख्य शरीरों में प्रवेश करने का मौका दिया जाय। इस तरह

हम सोचें तो एक गांधी गया और उसकी जगह अनेक गांधी पैदा हुए, ऐसी स्थिति हो सकती है।

जब एक युग खतम होकर दूसरा युग शुरू होने की तैयारी होती है तब बीच का कुछ ऐसा समय होता है जिसे किसी भी युग का नाम नहीं दे सकते। हम देखते हैं न? रात खतम हो गई और सूरज उगा नहीं ऐसे बीच के समय उपा होती है, जो न रात में गिनी जाती है, न दिन में। वैसे ही गुलामी का युग तो गया, लेकिन स्वतंत्रता का युग अभी नहीं आया है ऐसे बीच के समय में हम हैं। लोगों को लगता है कि स्वतंत्रता आ गई है। लेकिन वह गलत खयाल है। स्वतंत्रता अभी आने को है। हम तो अभी संधिकाल में हैं। इस संधिकाल में अध्ययन करने की जरूरत होती है। अपने देश की रचना कैसी करनी है इस बारे में सोचने का यह समय है। इस सोचने के समय में जल्दबाजी करना ठीक नहीं है। अभी तो ध्यान-योग का मौका है। इस वक्त सब से पहले हिंदुस्तान में पूरी एकता स्थापित्त करने की जरूरत है। उस एकता के कायम हो जाने के बाद बहुत सारे कार्यक्रम वेग के साथ किए जा सकते हैं। अभी उस बारे में उतावल करने की जरूरत नहीं है। लेकिन लोगों को अपना-अपना कार्यक्रम और अपनी-अपनी कल्पनाएं आगे बढ़ाने की उतावल हो रही है। आज कोई साम्यवाद की बात करता है तो कोई सनातन धर्म के गीत गाता है। मैं कहता हूं जरा सब्र करो और सोचो। अभी सब्र से कोई नुकसान होने वाला नहीं है। पहले एकता स्थापित करो। बाद में जो कुछ करना है किया जा सकता है।

यही देखो न, अभी लोगों को भाषावार प्रांत रचना की फिक्र लग रही है। मैं कहता हूं कि उसमें उतावल करने की जरूरत क्या है? वह तो होने वाली ही बात है, क्योंकि उसके पीछे विचार है। जनता की सेवा करनी है तो जनता की भाषा में ही हो सकती है। इसलिए राज्य कारोबार भी जनता की भाषा में ही चलना चाहिए। भाषावार प्रांत रचना के पीछे यही विचार है। लेकिन उस बारे में इतना अभिनिवेश और परस्पर विसंवाद क्यों हो रहा है? भाषावार प्रांत बनेंगे। उनकी सीमाएं एक समिति के द्वारा मुकर्रर की जाएंगी। लेकिन आज तो इस विषय में भी परस्पर विद्वेष बढ़ रहा है। यहां तक कि राष्ट्र-भाषा प्रचार से भी प्रांतीय भाषाओं को खतरा मालूम होता है। दर असल इसमें कोई खतरा नहीं है न कोई विरोध है। हिंदुस्तान की बहुत सारी भाषाएं एक ही संस्कार के भिन्न-भिन्न प्रकाशन हैं और किसी एक के विकास से दूसरे किसी को खतरा नहीं है। किसी एक का हित दूसरे के हित से विरोधी नहीं है।

सर्वोदय शब्द इसी तरह के विचार में से निकला है। सर्वोदय यानी सब का उदय। एक के उदय में दूसरे का भी उदय। एक मानव के, जाति के, समाज के, देश के, धर्म के हित में दूसरे किसी मानव का, जाति का, समाज का, देश का, धर्म का हित-विरोध नहीं होता है। सबका हित अविरोधी है। और सबका उदय एकत्र हो सकता है।

धर्म के प्रचार का नाम आजकल हम संख्या से करते हैं। लेकिन इससे अधिक गलत विचार और क्या हो सकता है?

वास्तविक धर्म आत्मा का विषय है। दुनिया के जितने धर्म हैं, सब भगवान के गुणों की अलग-अलग तरीकों से उपासना करने के लिए हैं। उनमें विरोध कैसे हो सकता है? वे तो एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। एक दूसरे की पुष्टि या शुद्धि या पूर्ति कर सकते हैं। एक के विकास में दूसरे का भी विकास होता है। एक व्यक्ति के कल्याण में दूसरे व्यक्ति का, और सारे समाज का कल्याण होता है, और समाज के कल्याण में हर एक व्यक्ति का कल्याण होता है। यही सर्वोदय की श्रद्धा है। इसी श्रद्धा की आज हिंदुस्तान को जरूरत है और यही हिंदुस्तान की संस्कृति है। हर एक व्यक्ति में, कुल में और समाज में कुछ गुण-विशेष होते हैं। उनका लोप नहीं, उनका पोषण ही करना है। जो राष्ट्र उन अलग अलग गुण-विशेषों के पोषण की उपेक्षा करेगा वह घाटे में रहेगा। हमें वैसा नहीं करना है। सबका अपने अपने ढंग से विकास होने देना है। लेकिन सबके अंदर रही हुई एकता की अनुभूति सर्व-प्रथम होनी चाहिए। उसीके आधार पर गुण-विशेषों का विकास हो सकता है। उसका आधार छोड़ देंगे तो गुण-विशेषों का गुण मिट जायगा और वे दोषरूप बन जायंगे।

आज सर्वत्र भेद-बुद्धि जोर कर रही है। और मुझे इससे आश्चर्य भी नहीं होता है, क्योंकि राज्यक्रांति के मौके पर महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति और शक्तियां अपने-अपने स्वार्थों के लिए देश में भेद पैदा कर देती हैं। फिर भी मैं अपने अनु-भव से देख रहा हूं कि आज जो भी हिंदुस्तान को अभेद और

एकता का संदेश सुनाता है उसकी बात लोग आतुरता से सुनते हैं। आप भी कितनी तन्मयता से मेरी सुन रहे हैं यह मैं देख रहा हूं। यहां की संस्कृति में ही यह बात भरी है। हिंदुस्तान की जनता का हृदय एक है। ऋषियों की तपस्या का मूर्तिरूप हिमालय जब तक खड़ा है और परोपकार की मूर्तिरूप गंगामैया जब तक बहती है, तब तक हिंदुस्तान का हृदय एक रहनेवाला है। लाखों लोग सूर्य-चंद्रादि के ग्रहणों के मौके ढूंढ कर गंगा जी में स्नान करते हैं और अपने को पावन महसूस करते हैं। उसमें उनको क्या मिलता है ? उसमें हिंदुस्तान की एकता का दर्शन उनको होता है। हमारे देश की नदियां, हमारे देश की मिट्टी हमें पावन लगती है। यह एक पागलपन ही है। लेकिन इस पागलपन में एक महान् ज्ञान है। और मैं मानता हूं उसके सामने सारे भेद गायब हो जानेवाले हैं, जैसे प्रकाश के सामने अंधकार। अंधकार अभावरूप है, उसका नाश होनेवाला ही है।

पटना
१-६-४७

: २६ :

तंगी का इलाज

अभी मैं बिहार हो आया। वहां रचनात्मक काम करने-वालों का संमेलन था। बिहार में कार्यकर्ताओं का अच्छा

जमाव है। सबने एकत्र होकर काम करने का प्रस्ताव किया। चरखा संघ की यही नीति है कि हर प्रांत स्वतंत्र बुद्धि से अपना-अपना काम करे। उसी नीति के अनुसार बिहार प्रांत स्वतंत्र होकर अच्छा काम कर रहा है।

लेकिन मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य होता है कि देश में कपड़े की इतनी तंगी और चरखा संघ के प्रयोगों के बावजूद खादी के बारे में न तो लोग ही गंभीरता से सोचते हैं और न नेताओं के ही दिमाग में यह बात आती है। खादी एक बिलकुल सादी-सी बात है। शायद इसीलिए वह ध्यान में नहीं आ रही है। देशभर में कपास हो सकती है, चरखे बन सकते हैं, सिर्फ कातना सिखाने की व्यवस्था करनी होगी। चरखासंघ का पचीस साल का अनुभव है, उसकी मदद मिल सकती है।

लेकिन खद्दर से कपड़े का सवाल हल हो सकता है, यह बात ध्यान में नहीं आती। इसका कारण यही है कि हम पर पाश्चात्यों की विद्या ने जादू कर दिया है। हम आजाद तो हुए हैं, लेकिन बुद्धि की आजादी एक दूसरी ही बात होती है। मुझे डर है कि वह आजादी हमें अब तक हासिल नहीं हुई है। पाश्चात्यों ने एक अर्थशास्त्र बनाया है। उसके कुछ नियम बना रखे हैं। हमें डर है कि उन नियमों में शायद खादी नहीं बैठेगी। कांग्रेस की पंचायत के उम्मीदवार के लिए तो खद्दर पहनना लाजमी कर दिया है। जैसे शराबी, वैसे मिल का कपड़ा पहनने वाला भी कांग्रेस का उम्मीदवार नहीं हो सकता, ऐसा नियम बनाया है। खादी के लिए इतनी

निष्ठा प्रगट करते हुए भी वह अभी तक हमारे दिमाग में जमी नहीं है। बने बनाए अर्थशास्त्र के कानूनों का हमें डर लगता है।

लेकिन अर्थशास्त्र कोई गणित जैसा शास्त्र तो नहीं है। गणित के कानून मनुष्य की परवा नहीं करते। वे निरपेक्ष होते हैं। उन कानूनों को जान कर मनुष्य को अपना जीवन उनके अनुकूल बनाना होता है। लेकिन अर्थशास्त्र के कानून तो मनुष्य के बनाए हुए हैं। उनसे मनुष्य बाध्य नहीं हो सकता। हर एक देश का उसकी परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग अर्थशास्त्र हो सकता है। इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि हिंदुस्तान की एक विशेष हालत है, जो दुनिया में शायद ही किसी राष्ट्र की होगी। अंग्रेजों की हुकूमत में यहांके बहुत सारे उद्योग-धंधे टूट गए हैं। खेती फी आदमी मुश्किल से तीन चौथाई एकड़ है। केवल इतनी खेती के आधार पर यहांका किसान सुखी नहीं हो सकता। खेती में जो कच्चा माल पैदा होता है उसका पक्का माल जब तक किसान नहीं तैयार करता है तबतक वह सुखी बननेवाला नहीं है। खेत में कपास होती है, उसका उसे कपड़ा बनाना चाहिए। गन्ना होता है उसका गुड़ बनाना चाहिए। तिल्ली होती है उसका तेल बनाना चाहिए। इस तरह जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की चीजें उसे खुद बनानी चाहिए। गौण आवश्यकताओं की चीजें वह शहर के कारखानों से खरीद सकता है। इस तरह वह स्वावलंबी नहीं होगा तो नई दिल्ली-वाला स्वराज्य उसके क्या काम आयगा? स्वराज्य तो

किसान के लिए तब होगा जब हर देहात में अनाज के साथ-साथ कपड़ा पैदा होगा, ग्रामोद्योग की दूसरी चीजें बनेंगी, मकान भी वहींके सामान के बनेंगे, और काम के औजार भी वहीं के होंगे।

मैंने ग्रामोद्योग के साथ मकान बनाने का जिक्र किया है, वह भी सोचने लायक है। यहीं देखो। निर्वासितों के लिए मकानों की सख्त जरूरत होते हुए भी मकान नहीं बनते थे। क्योंकि हमारे इंजिनियरों को मिट्टी के मकान बनाने की बात सूझती ही नहीं थी। हमने आग्रहपूर्वक मिट्टी के मकान बनाने का प्रयोग करके देखा तो मालूम हुआ कि यहांकी मिट्टी घर बनाने के लिए बहुत अच्छी है। इसलिए अब वह काम शुरू हो गया है। बिहार में मिट्टी के मकान मैंने देखे। वहां बारिश भी बहुत होती है। फिर भी वे मकान बरसों टिकते हैं, ऐसा वहां का अनुभव है। लेकिन पाश्चात्य विद्या के कारण सादी बातें हमें सूझती नहीं। मकान की बात निकली तो सीमेंट हमारी आंखों के सामने आता है। ऐसा ही हाल खद्दर के बारे में हो रहा है। पाकिस्तानवाले भी अब खद्दर की बात कर रहे हैं। वे कोई खद्दर के प्रेमी तो नहीं हैं लेकिन आवश्यकता के कारण उनको वह करना पड़ रहा है। कांग्रेस का तो खद्दर से प्रेम भी है। फिर यहां राष्ट्रीय पैमाने पर खद्दर का अवलंबन क्यों नहीं करना चाहिए?

मेरा तो निश्चित मत है कि अगर हम चरखे को अपनाएंगे, उसके शास्त्र का जितना अनुभव आया है उसका उपयोग

करेंगे तो दो साल के अंदर हिंदुस्तान के देहात की कपड़े की आवश्यकता आसानी से पूरी की जा सकेगी।

राजघाट, दिल्ली
११-६-४८

: ३० :

स्त्रियों का दायित्व

यहां की हमारी शरणार्थी सिंधी बहनों ने 'नारी-शाला' चलाई है। उसे देखने आज मैं गया था। वहां स्त्रियों को तरह-तरह के काम सिखाए जाते हैं जिनमें सिलाई का काम मुख्य है। यहां अजमेर में सिलाई का काम प्रायः मुसलमान करते थे। उनके जाने से यहां इस काम को करनेवालों की कमी हो गई है। मैं उम्मीद करता हूं कि इन स्त्रियों को यह काम अच्छी तरह मिल जाएगा और लोग कुछ अधिक दाम देकर उनसे यह काम लेंगे। हमारे यहां रिवाज है कि दान के मौके पर दान देते हैं, लेकिन जब बाजार में कुछ खरीदने जाते हैं तो कंजूसी की भावना रखते हैं। दरअसल खरीदते समय उदारवृत्ति रखनी चाहिए और काम करनेवालों को पूरे दाम मिलें, ऐसी इच्छा रखनी चाहिए। ऐसा होगा तो दूसरे किसी दान की जरूरत नहीं रहेगी। सच्चा दान गुप्त होना चाहिए। ऐसा गुप्त दान मजदूरी के रूप में ही दिया जा सकता है। मजदूरी देनेवाला यह नहीं मानेगा कि मैं

दान दे रहा हूं और लेनेवाला यह नहीं मानेगा कि मैं दान ले रहा हूं। जब दोनों की ऐसी भावना रहती है तब गुप्त दान होता है। और वही सच्चा दान है।

लेकिन आज मैं मुख्य रूप से यह बात नहीं कहना चाहता था। उस शाला में, मैंने, सिंधी स्त्रियों का सामुदायिक भजन सुना, जिससे चित्त प्रसन्न हुआ। उन्होंने नानक साहब के भजन सुनाए। एक सिंधी भजन भी सुनाया। महाराष्ट्र में इस तरह स्त्रियों के सामुदायिक भजन मैंने नहीं सुने। महाराष्ट्र में भजन तो हर गांव में चलता है लेकिन वह पुरुषों का होता है। स्त्रियां परमेश्वर की भक्ति करती हैं, गीत गाती हैं, लेकिन सामुदायिक तौर पर भजन करने का उनके यहां रिवाज नहीं है। सामुदायिक भजन में महान् शक्ति है। शरणार्थी स्त्रियों को सामुदायिक भजन गाते हुए मैंने सुना तो मुझे लगा कि जिन स्त्रियों के पास ऐसी महान् शक्ति पड़ी है, वे अगर यहां की स्त्रियों के साथ सामुदायिक भजन का प्रयोग करेंगी तो भगवान के नाम से सबके हृदय एकरूप बन जायंगे। हृदय में भक्तिभाव रख कर सामुदायिक भजन करती हुईं शरणार्थी बहनें अगर यहां की बहनों में मिल जाती हैं तो यहां दोनों समाजों के बीच जो कुछ मनमुटाव है वह सब साफ हो जायगा। और शरणार्थियों के सवाल को, कुछ अंश में हल करने में वे मदद देंगी। मैं तो यहां तक मानता हूं कि जहां दो पागल टोलियां दंगा करने की तैयारी में हों उनके बीच यदि ऐसा सामुदायिक भजन शुरू किया जाय तो उस दंगे को वह भजन रोक सकेगा। दंगे मिटाने का यह

एक कारगर अहिंसक तरीका हो सकता है।

गांधी जी ने बहुत बार कहा था कि अहिंसा की शक्ति प्रकट करने में स्त्रियां पुरुषों से अधिक योग्यता दिखायेंगी। गांधी जी की यह आशा सकारण थी। क्योंकि हमने देखा है कि हिंदुस्तान की बहनें जो सदियों से घर छोड़ कर बाहर नहीं गई थीं वे असहयोग के युग में हजारों की तादाद में बाहर आईं, और पुरुषों की बराबरी में उन्होंने काम किया। पुलिस के लाठीचार्ज का मुकाबला हिम्मत से किया। हजारों की तादाद में जेल में गईं। शराब की दूकानों पर स्त्रियों ने पिकेटिंग किया। लोगों को डर लगता था कि शराबियों के सामने स्त्रियां क्या करेंगी, लेकिन उन्होंने शराबियों को शरमाया और वे कामयाब हुईं। यह महान् जागृति हमने आंखों से देखी, उसका कारण यह था कि स्वतंत्रता की लड़ाई का, गांधी जी का तरीका अहिंसा का था, जिसमें स्त्रियों की शक्ति का विकास और दर्शन हो सकता था। हिंसा के आधार पर लड़ाइयां चलती थीं तो उनमें स्त्रियों के लिए कोई स्थान नहीं होता था। इतना ही नहीं, बल्कि तब स्त्रियां रक्ष्य मानी जाती थीं। उनके रक्षण की ही फिक्र करनी पड़ती थी, लेकिन अब तो स्त्रियों को पुरुषों की मदद के लिए सार्वजनिक मैदान में आना चाहिए।

अपनी सारी अक्ल लगा कर पुरुषों ने दुनिया का कारोबार इतना बिगाड़ दिया है कि २५ साल में दो जागतिक युद्ध हुए और तीसरे की तैयारी है। इसका अर्थ यह हुआ कि पुरुषों की अक्ल का दिवाला निकल चुका है। दुनिया को बचाने

का काम अहिंसा से ही हो सकता है। वह स्त्रियों की प्रवृत्ति के विशेष अनुकूल है। उन्हें चाहिए कि वे सार्वजनिक काम में उतरें और उसको ठीक शक्ल दें। बीमारों की सेवा का काम तो उनका खास काम है, लेकिन बच्चों की तालीम का काम भी उन्हीं के हाथ में होना चाहिए। राजकाज में भी उन्हें दखल देना चाहिए और पुरुषों के बिगाड़े हुए काम को सुधारना चाहिए, लेकिन यूरप में हम देखते हैं कि स्त्रियां पुरुषों का अनुकरण करके लश्कर में भी भरती होती हैं और यहां भी सुनते हैं कि कई स्त्रियां लश्करी तालीम की मांग कर रही हैं। स्त्रियों से हमारी यह अपेक्षा नहीं, उनका यह मार्ग नहीं है। उन्हें तो पुरुषों के आजमाए और निकम्मे साबित हुए तरीकों में क्रांति करनी है। इस काम के लिए हमारी माता, बहनें आगे आएंगी तो भारत माता का उद्धार अवश्य होगा।

अजमेर
१२-६-४८

: ३१ :

आंतरिक शांति की आवश्यकता

चंद दिनों से अफवाहें उड़ रही थीं कि दिल्ली में १५ ता० को कुछ गड़बड़ी होने वाली है। इसलिए दो चार रोज से गांव में मिलिटरी की गाड़ियां, पुलिस आदि घूमते हुए दिखाई

देते हैं। हमारे लिए यह बड़े शर्म की बात है। इस तरह हमारी सरकार की शक्ति अगर हम ज़ाया करेंगे तो हमारा राष्ट्र दुनिया में ताकत के साथ काम नहीं कर सकेगा। जिस देश की शक्ति आंतरिक शांति रखने में खत्म होती है वह कोई असली काम नहीं कर सकता।

इतने बड़े मुल्क में विचारों में भेद हो ही सकते हैं। सबका एक विचार होना संभव नहीं है। इस दशा में दूसरी तरह के विचार रखने वाले अपने विचारों का प्रचार योग्य मर्यादा में कर सकते हैं। आज की हुकूमत जनता की है। लोग चाहें तो उसको बदल भी सकते हैं। जनता जिनको शासन का अधिकार देगी वे शासन करेंगे। ऐसी हालत में देश में शांति रखने का जिम्मा अलग-अलग विचार रखने वाले सब लोगों पर है। अपने विचार लोगों को समझा कर लोकमत अपने अनुकूल बनाने का हर एक को हक है। लेकिन वह काम इस ढंग से करना चाहिए कि जिससे देश में फसाद या अशांति पैदा न हो। देश में अशांति रहेगी तो सरकार को और सेवकों को शांति-स्थापना की ओर ही ध्यान देना पड़ेगा और गरीबों की सेवा का काम वैसे ही रह जायगा और अंतरराष्ट्रीय जगत में हमारा देश कमजोर साबित होगा।

यह सब मैं उन लोगों को समझाना चाहता हूं कि जिनको वर्तमान सरकार का रवैया संतोषकारक नहीं मालूम होता। इतने बड़े देश की स्वतंत्रता तभी टिक सकेगी जब हर एक अपनी अपनी मर्यादा को सम्हालेगा। मर्यादा को नहीं सम्हालेंगे तो निस्तंत्रता आएगी। यानी देश में अराजकता और अव्यवस्था

पैदा होगी और बाहर के आक्रमण की संभावना बढ़ेगी। सैकड़ों सालों के बाद जनता की सेवा करने की सत्ता हमारे हाथ आई है। उसको हमें टिकाना चाहिए। मर्यादा यही है कि लोग ठीक विचार करना सीखें, यह सीखें कि अपने वोट का उपयोग किस तरह करना चाहिए, किसी का किसी पर बलात्कार न हो, आपस-आपस में फसाद या झगड़े न हों। यह मर्यादा संभालेंगे तो हर किसीको अपने विचारों को फैलाने का मौका मिल सकता है।

राजघाट, दिल्ली
१६-६-४८

: ३२ :

चावल-तराशी बंद करो

अभी बिहार के कार्यकर्ताओं की संस्था में सरकार से मांग की गई है, कि चावल पालिश करनेवाली मिलें बंद की जायं। इस सवाल की ओर ग्रामोद्योग बनाम यंत्रोद्योग की दृष्टि से अभी मैं नहीं देखता हूं, यद्यपि इन मिलों ने गांवों के बहुत सारे मजदूरों को बेकार बनाया है लेकिन वह विचार इस समय मैं छोड़ देता हूं। अभी तो हिंदुस्तान के पोषण की दृष्टि से मैं इसका विचार करना चाहता हूं। हिंदुस्तान को अपना अनाज पूरा नहीं पड़ रहा है और बाहर के देशों से अनाज मंगाना पड़ता है। हमारे लिए यह बहुत शर्म की

बात है। इतने विशाल देश की आजादी के लिए यह शोभा नहीं देता है। ऐसी हालत में चावल को मिलों में पालिश करके उसका पोषकतत्त्व नष्ट क्यों किया जाय? हिसाब लगाया गया है कि ४० तोले पालिश किए हुए चावल खाने से जो पोषण मिलेगा वह ३५ तोले पूर्ण चावल से मिल सकेगा। हमारा अनुभव तो ऐसा है कि पूर्ण चावल तो इससे भी कम लगता है। लेकिन ऊपर का हिसाब भी हम मान लें तो उसका मतलब क्या हुआ? हिंदुस्तान के ३० करोड़ लोगों में से एक चौथाई यानी करीब सात करोड़ लोग चावल पर रहते होंगे ऐसा हम मानें, तो उतना ही चावल बिना पालिश का इस्तेमाल करने से आठ करोड़ लोग उसपर जियेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि चावल को पालिश करके एक करोड़ लोगों का अन्न हम बरबाद कर रहे हैं। दूसरी भाषा में, चावल की खेती करके फसल का आठवां हिस्सा हम जला देते हैं ऐसे कहा जायगा। क्या हिंदुस्तान की आज की हालत में यह गुनाह नहीं है?

सब डाक्टरों की—जिनमें सरकारी डाक्टर भी शामिल हैं—राय है कि चावल को पालिश करने से इसका 'बी' विटैमिन नष्ट हो जाता है। जब हम लोग जेल में थे, सी० पी० सरकार ने इस विषय पर एक पत्रक निकाला था। उसमें पूर्ण चावल की सिफारिश की गई थी। इस पत्रक को पढ़कर जेल में हम लोग हँसते थे। क्योंकि सरकार अपनी जेलों को तो पालिश किया हुआ चावल ही देती थी। एक पत्रक निकालने से अपना काम पूरा हो गया ऐसा उसने मान लिया। लेकिन

कांग्रेस की सरकार है। अनाज की तंगी होते हुए क्यों न मिलें अब तो बंद की जायं! एक भाई ने मुझ से कहा "मिलों को बंद करने की जरूरत नहीं है। मिलें भी बिना पालिश का चावल आप को दे सकेंगी।" मैंने कहा "आज तो मुझे पोषण की दृष्टि से ही देखना है, इसलिए फिलहाल मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।" लेकिन उनकी मुसीबत यह है कि पूर्ण चावल अधिक दिन तक टिकता नहीं। कीड़े उस चावल को जल्दी खा जाते हैं। मैं कहता हूं जरा सोचिए तो! पूर्ण चावल को कीड़ा क्यों लगता है? क्योंकि वह अक्ल रखता है। वह जानता है कि उसमें पोषण है। उस कीड़े को जो अक्ल है उतनी तो हमें होनी चाहिए! बिना पालिश का चावल अगर ज्यादा दिन नहीं टिकता है तो उसकी कोई दूसरी व्यवस्था करो। लेकिन मिलों में चावल को पालिश करने की मनाही होनी चाहिए या फिर मिलें ही बंद होनी चाहिए।

पवनार गांव में बिना पालिश के चावल का हमने प्रयोग करके देखा। उसको खाने वाले देहाती भाई कहते थे कि उस में दिन भर काम में फुर्ती रहती है, और वे ज्यादा काम कर सकते हैं। उस चावल को पकाने में शहर वालों को दिक्कत मालूम होती है। लेकिन कुकर में भाप से पकाया जाय तो वह चाहे जैसा मुलायम पकाया जा सकता है। मेरी सूचना है कि आप लोग इस चीज पर विचार करें, और सरकार को जल्द से जल्द चावल की पालिश कतई बंद करने के लिए मनाएं।

राजघाट, दिल्ली

१८-६-४८

: ३३ :

आत्मौपम्य दृष्टि

पिछली बार मेवों के विषय में मैंने थोड़ा जिक्र किया था। इस हफ्ते में मैं इसी कार्य में लगा रहा। कल मेवात का एक दौरा कर आया। हजारों की तादाद में मेव सभा में आए थे। मैंने देखा कि वे बहुत दुःख में हैं। वैसे तो शरणार्थी भी दुःख में पड़े हुए हैं। लेकिन शरणार्थी की हैसियत से उनके लिए कैम्प आदि की कुछ व्यवस्था तो की गई है। इनकी बात दूसरी है। ये अलवर, भरतपुर में रहते थे और खेती करते थे। इन को वहां से भाग जाना पड़ा। इनमें से कुछ पाकिस्तान चले गए, कुछ लोगों ने यहीं रहना मुनासिब समझा और वे गुड़गांव जिले में रह गए। वे चाहते हैं कि उनको अपने घरों में बसाया जाय। हर कोई सोचे तो समझ सकता है कि उनकी यह मांग बेजा नहीं है। हमारी सरकार ने कई बार ऐलान किया है कि वह सांप्रदायिक ढंग से नहीं सोचेगी, जो भी देश के प्रति वफादार रहेंगे उनकी जिम्मेवारी उस पर रहेगी। अभी हमारे नए कुल-मुख्तार राजा जी ने अपने पहले ही व्याख्यान में कह दिया कि यह सब की सरकार है, यह कौम-कौम में फर्क नहीं करेगी। गांधी जी ने बार-बार यही बात हम लोगों को समझाई है।

मैं मानता हूं कि सरकार अपनी जिम्मेवारी महसूस करती है। लेकिन कुछ मौकों पर तेज रफ्तार की जरूरत होती है।

अब बारिश नजदीक आ गई है। इस समय उनको फौरन कुछ-न-कुछ जमीन मिल जानी चाहिए। अगर वैसा न हुआ तो उनका क्या हाल होगा ? संत तुकाराम ने अपने एक भजन में किसान की मनोदशा का वर्णन किया है। वह लिखता है कि जब बीज बोने का समय आ जाता है तो यदि घर में कोई मनुष्य मर गया है तो भी किसान उसकी लाश को ढांककर खेत बोने के लिए चला जाता है। किसान के मन की तीव्रता तुकाराम ने इसमें बताई है। वही हाल मेवों का है। वे आसमान में बादल देखते हैं तो उन्हें फौरन अपने खेत याद आते हैं। जमीन जल्दी न मिली तो कैसे गुजारा होगा, इसकी चिंता उनको लगी है। उनकी वह चिंता अगर हमें प्रभावित नहीं करती है तो हम इस बड़े देश में रहने के लायक नहीं हैं। बड़े देश में रहने वालों के दिल भी बड़े होने चाहिए। देश बड़ा और दिल छोटे यह बात जमती नहीं है। दूसरों की हालत उन्हींकी निगाह से सोचनी चाहिए। इसीको गीता ने आत्मौपम्य कहा है। हम अगर उनकी हालत में होते तो हमें कैसा लगता ? इस तरह सोचकर जो जवाब मिलेगा, वैसा उनसे हमें व्यवहार करना चाहिए। दूसरों से हम जैसा बर्ताव चाहते हैं, वैसा बर्ताव हमें दूसरों के साथ करना चाहिए। ऐसी आत्मौपम्य दृष्टि हम रखेंगे, तभी बड़े देश को कायम रख सकेंगे।

राजघाट, दिल्ली
२५–६–४८

: ३४ :

हम सब हरिजन बन जायं

आज गांधीजी का पांचवां मासिक दिन है। आज मैंने उनके प्यारे हरिजनों के बारे में कुछ कहने का सोचा है। आप जानते हैं कि पश्चिम पंजाब से पूर्व पंजाब में लाखों शरणार्थी आए हैं, जिनमें हरिजन भी बहुत हैं। उनकी मांग थी कि उनको भी यहां खेती के लिए जमीन दी जाय। उसका जिक्र मैंने एक दफा यहां प्रार्थना में किया था। पूर्व पंजाब सरकार की इस संबंध में कुछ मुश्किलें थीं। उन्होंने शरणार्थियों को बसाने का एक तरीका तय किया था, जिसके अनुसार जिन लोगों की पाकिस्तान में जमीनें थीं उन्हींको यहां जमीन दी जा सकती थी। वहां जितनी थी उतनी तो नहीं दे सकते थे, लेकिन उसीके अनुपात से देना तय किया था। उसके अनुसार चूंकि पाकिस्तान में हरिजनों की जमीन नहीं थी, यहां भी उनको जमीन नहीं मिल सकती थी। इसपर हरिजनों का कहना था कि वहां तो हम गुलाम थे, अब क्या यहां भी हमें गुलाम ही रक्खा जायगा? हमें जमीन जरूर मिलनी चाहिए। आखिर सरकार ने यह निश्चय किया है कि जो जमीन उसके पास बचेगी उसमें से कुछ हरिजनों को भी दी जायगी। इस तरह कोई २-३ लाख एकड़ जमीन उनको मिल जायगी। इस कार्य के लिए मैं पूर्व पंजाब सरकार को धन्यवाद देता हूं। अभी तो वह जमीन एक साल के लिए ही मिलेगी।

क्योंकि वहां किसी को भी इस समय स्थायी तौर से जमीन नहीं दी जा रही है। एक साल के बाद फिर देखा जायगा। इसके अलावा पूर्व पंजाब सरकार ने यह भी जाहिर किया है कि हरिजनों का दर्जा किसानों का घोषित किया जायगा।

यह सब अच्छा है। लेकिन मुझे तो दुःख इस बात का है कि अभी भी हरिजन हमसे अलग अवशिष्ट हैं। पंद्रह महीनों के पहले जब अंग्रेजों ने जाहिर किया कि हम जून १९४८ के अंदर हिंदुस्तान छोड़कर चले जायंगे तब मैंने कहा था कि 'हम स्वराज्य में प्रवेश करेंगे उससे पहले अगर अस्पृश्यता को यहां से निकाल दें तो कितना अच्छा होगा।' लेकिन दुःख की बात है कि अंग्रेज गए, स्वराज्य मिला, और अब भी छुआछूत नहीं गई। वैसे विधान परिषद् ने जाहिर कर दिया है कि हम अस्पृश्यता को नहीं मानेंगे। लेकिन जो सामाजिक सवाल है उसके लिए सारे सामाजिक जीवन और आचरण में परिवर्तन होने की जरूरत होती है। मद्रास में—जहां अधिक-से-अधिक कट्टरता थी—सारे मंदिर हरिजनों के लिए खुल गये हैं। लेकिन मैं देखता हूं कि उत्तर हिंदुस्तान में मंदिर नहीं खुले हैं, और न कोई ऐसी हलचल ही चली है।

हरिजनों को किसानों का दर्जा दिया उतने से काम पूरा नहीं होता है। हरिजन जिन कामों को करते हैं उन कामों को भी हमें ऊंचा उठाना चाहिए। इसी दृष्टि से वर्धा में हमारे यहां चमड़े के काम में कार्यकर्ता लग गए हैं, जिनमें कुछ ब्राह्मण भी हैं। वहां कुछ कार्यकर्ता मेहतरों का भी काम करते हैं। ये नीच काम नहीं हैं, बल्कि समाज की सेवा के उत्तम काम

हैं। नीच काम है झूठ बोलना, काला बाजार करना, लोगों को ठगना; जो बहुत सारे ऊंचे कहलाये जाने वाले लोग करते हैं। वास्तव में चमार, मेहतर आदि लोग ऐसी सेवा करते हैं कि जिसके बगैर समाज का जीवन असंभव है। यह जरूर है कि आज जिस ढंग से ये काम किये जा रहे हैं उसमें मलिनता है। स्वच्छतापूर्वक वे कैसे किये जा सकते हैं यह बतलाना हमारा काम है। उन कामों को शुद्ध करके हम वह बता सकते हैं। हरिजन नाम के कोई अलग लोग न रह कर, हम सारे ही हरिजन यानी भगवान के जन बनें। वह स्वामी हम सेवक, वह पिता हम सब उनके पुत्र, इस तरह हम एक हो जायं। हिन्दुओं को बलवान और संगठित बनाने की बात लोग करते हैं, लेकिन वे यह नहीं समझते हैं कि हिंदू-समाज को अत्यन्त कमजोर अगर किसी चीज ने किया है तो, वह इस छुआछूत के भेद ने किया है। इस भेद को मिटाने में हम लोगों को लग जाना चाहिए। दूसरों का द्वेष करके कोई समाज मजबूत नहीं होता है। अस्पृश्यता को मिटायेंगे और सब हरिजन बनेंगे तभी हम स्वराज्य के लायक बनेंगे और उसको टिका सकेंगे।

दिल्ली, राजघाट

३०–६–४८

: ३५ :

सामूहिक प्रार्थना का संकल्प

गरमी की तकलीफ के बाद जब बारिश होती है तो ठंडक मालूम होती है, ठीक यही परिणाम प्रार्थना का आत्मा पर होता है। बारिश का परिणाम शरीर पर और उसके द्वारा मन पर होता है तो प्रार्थना का परिणाम हृदय के द्वारा आत्मा पर होता है।

आज हम बारिश के बावजूद चंद भाई भगवान की प्रार्थना के लिए यहां इकट्ठे हुए हैं। ईश्वर की प्रार्थना के लिए हम सबके हृदय एकत्र हो गये हैं। इस तरह जो प्रार्थना में शरीक होते हैं वे सच्चे अर्थ में भाई-भाई और भाई-बहन बन जाते हैं। एक माता के लड़के जो भाई-भाई कहलाते हैं उनमें भी विचार भेद हो सकता है। लेकिन परमात्मा की प्रार्थना के लिए एकत्र होने वाले, हृदय से एक हो जाते हैं।

आज तो थोड़ी बारिश हुई। लेकिन संभव है कि किसी दूसरे शुक्रवार को बहुत बारिश हो, तब भी बीमार आदि को छोड़ कर, हममें से जो लोग दिल्ली में ही हों, और यहां आ सकते हों, उनको प्रार्थना के लिए जरूर आना चाहिए। वैसे आज तो हम बैठ कर भी प्रार्थना कर सकते थे। लेकिन आगे कभी अधिक बारिश के कारण बैठकर प्रार्थना न हो सकी तो क्या होगा, उसका खयाल करके आज तालीम के तौर पर खड़े होकर ही प्रार्थना करने का मैंने विचार किया है।

भगवान तो सर्वत्र है, हम जहां होंगे वहीं वह मौजूद है, हमारे हृदय में विराजमान है। उसकी प्रार्थना तो हर जगह, हर समय, और हर काम में हम कर सकते हैं, और करनी चाहिए। फिर भी जब हम लोगों ने सामुदायिक प्रार्थना की एक जगह, और एक दिन निश्चित किया है तो उसको पूरा करने में हमारा संकल्प-बल बढ़ता है। ऐसा संकल्प-बल हमें हमारे सांसारिक, सामाजिक और पारमार्थिक जीवन में बहुत मदद देता है। आज हम देख रहे हैं कि इस मजमे में छोटे बच्चे भी हमारे साथ खड़े हैं, उनके दिल को क्या लगता होगा? इस घटना का असर उनके जीवन में किस तरह प्रकट होगा, कौन कह सकता है? हम भी भगवान के सामने बच्चे ही हैं। बच्चों के जैसी श्रद्धा रखकर, निर्दोष बनकर, ग्रहण-शील होकर भगवान की प्रार्थना में खड़े हो जायंगे तो हमारे सारे पाप धुल जायंगे। और एक ऐसी रूहानी ताकत पैदा होगी, जिससे जीवन में अपार आनंद और स्फूर्ति महसूस होगी।

राजघाट, दिल्ली

९-७-४८

: ३६ :

वानप्रस्थ

आठ महीने पहले हमारे यहां पौनार के एक भाई की वानप्रस्थाश्रम प्रवेश की एक विधि हुई थी। आज यह दूसरा

प्रसंग है । इन भाई ने वानप्रस्थाश्रम की प्रतिज्ञा आज ली है । यह युक्तप्रांत के रहने वाले हैं । उनके साथ उनकी पत्नी का भी पूरा सहकार है । वैसे तो कुछ वर्षों से वह इसकी कोशिश कर रहे हैं । मैं वर्षों से उनको जानता हूं । उनकी तीव्र इच्छा देखी इसलिए मैंने भी उनकी प्रतिज्ञा का साक्षी होना मंजूर कर लिया ।

हमलोगों में वर्णाश्रम नाम का एक शब्द रूढ़ है । शब्द तो वह एक है, लेकिन उसमें चीजें दो हैं, वर्ण और आश्रम दोनों बिल्कुल अलग-अलग चीजें हैं । वर्ण का संबंध समाज-व्यवस्था से है । समाज-व्यवस्था बदल भी सकती है । जिस जमाने में जो व्यवस्था हो उसके अनुसार हर एक अपना कर्तव्य करे । यही वर्ण-व्यवस्था का तात्पर्य है । जहां किसी समाज में ऐसी कोई व्यवस्था है ही नहीं, वह समाज खतरे में है । लेकिन एक ही तरह की व्यवस्था हर समय रहे ऐसा आग्रह नहीं चल सकता ।

आश्रम-व्यवस्था का समाज से उतना संबंध नहीं है जितना व्यक्ति के निजी जीवन से । इसलिए वह हर समय और हर समाज के लिए लागू होता है । उसमें कुछ बाह्य परिवर्तन हो सकता है । लेकिन उसका मूल-स्वरूप कायम रहेगा । हिंदू-धर्म ने जैसी बाक़ायदा आश्रम व्यवस्था की है वैसी दूसरे धर्मों ने नहीं की है । लेकिन उसके पीछे जो विचार हैं वे तो सब धर्मों में मौजूद हैं । हिंदू-धर्म में यह व्यवस्था तो आज टूट गई है । विवाह विधि तो सभी करते हैं, पर वानप्रस्थ आश्रम की भी एक विधि होती है और वह की जानी चाहिए, आम

लोग यह जानते भी नहीं । उपाध्याय आदि वर्ण के लोग जिनपर यह जिम्मेदारी है कि लोगों को अपने धार्मिक कर्तव्य का भान करावें, स्वयं इस बारे में अनजान हैं । हिंदू-समाज की आज ऐसी दुर्दशा हो गई है ।

आश्रम-व्यवस्था के पीछे यह विचार है कि मनुष्य-जीवन का उद्देश्य विषय-भोग नहीं, विश्व-सेवा है, संयम साधकर ईश्वर का साक्षात्कार करना है । अगर यह ठीक है तो जो विषय-वासना उत्पन्न होती है उसे योग्य रूप देना चाहिए, उसका नियमन करना चाहिए और जल्द से जल्द उससे मुक्त होने का रास्ता ढूंढ़ना चाहिए । इसी प्रयत्न का नाम आश्रम-व्यवस्था है ।

आश्रम-व्यवस्था के पुनः स्थापन की हम वर्षों से कोशिश करते आए हैं । आज समाज में वैयक्तिक ब्रह्मचर्याश्रम तो है नहीं । अविवाहित जीवन ही उस नाम से पहचाना जाता है । इतना ही नाम मात्र का गृहस्थाश्रम भी है । अपनी संस्था में दोनों की शुद्धि का प्रयत्न हमने किया है । वानप्रस्थ-आश्रम की शुद्धि का भी हमने प्रयत्न किया है । विधि के हिसाब से तो आज का यह प्रसंग दूसरा ही है, परन्तु वानप्रस्थ को स्वीकार और तदनुसार आचरण तो आश्रम में बहुतों ने किया है । गांधीजी ने अपने जीवन से इसका आदर्श दिखाया है । उन्होंने हमें सिखाया कि गृहस्थाश्रम में भी विषय-वासना को दूर रखने की कोशिश होनी चाहिए । मैंने भी जब-जब प्रसंग आया यथाशक्ति इस विचार का प्रचार किया है । विधिपूर्वक वानप्रस्थ लेने का प्रचार तो शायद मैंने ही किया है, ऐसा